प्रकाशक का निवेदन

साहित्य-रत्न-माला का यह तीसरा ग्रंथ "बौद्ध-कालीन भारत" पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे बहुत सन्तोष तथा आनन्द होता है। इस सन्तोष तथा आनन्द का कारण यह है कि मैंने ग्रंथों का जो आदर्श अपने सामने रखकर साहित्य-रत्न-माला का प्रकाशन आरंभ किया था, यह ग्रंथ भी, पहले दोनों ग्रंथों की भाँति, उस आदर्श के अनुरूप ही हुआ है। जैसा कि पाठकों को इसके अनुशीलन से विदित होगा, इसके सुयोग्य लेखक महोदय ने इसके लिखने में प्रशंसनीय परिश्रम किया है; और अपने प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत अधिक सामग्री का अच्छा उपयोग किया है। बौद्ध-कालीन भारत के संबंध की प्रायः सभी उपयोगी और ज्ञातव्य बातों का इसमें समावेश हुआ है—करीब करीब सभी बातें इसमें आ गई हैं।

यह ग्रंथ आज से प्रायः तीन सादे तीन वर्ष पहले लिखा गया था, पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इतने दिनों में ऐसे अच्छे ग्रंथ को प्रकाशित करने के लिये कोई प्रकाशक ही न मिला। हिन्दी के प्रकाशकों और पाठकों के लिये यह एक प्रकार से लज्जा की ही बात है। मैं स्वयं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि हिन्दी में अच्छे ग्रंथों का उतना अधिक आदर नहीं होता, जितना होना चाहिए। पर साहित्य-रत्न-माला आर्थिक लाभ की दृष्टि से नहीं निकाली गई है। और इसी लिये जब यह ग्रंथ मेरे सामने आया, तब मैं तुरन्त ही इसे प्रकाशित करने के लिये तैयार हो गया। यद्यपि मुझे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और इस ग्रंथ की भाषा आदि ठीक करने में बहुत कुछ परिश्रम भी करना पड़ा,

[illegible] इतिहास

[illegible]—जैन धर्म के चौबीस [illegible] स्वामी की जीवनी—[illegible]—[illegible] और दिग-[illegible] पृष्ठ [illegible] से [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]—राहुल का [illegible]—मार का [illegible]—बुद्ध का [illegible] धर्म परिवर्तन—[illegible]—नालागिरि [illegible]—आनन्द सत्कार—[illegible] पृष्ठ [illegible] से [illegible]

[illegible]

[illegible] और [illegible] प्रज्ञा या ज्ञान [illegible] माता-पिता [illegible] और साथी—[illegible] और सेवक—[illegible] पृष्ठ [illegible] से [illegible]

आठवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल के प्रजातन्त्र राज्य

बुद्ध के समय में प्रजातन्त्र राज्य—शाक्यों का प्रजातन्त्र राज्य—शाक्यों का प्रजातन्त्र राज्य—सिकन्दर के समय में प्रजातन्त्र राज्य—आरट्ट (अराट्टक)—मालव और क्षुद्रक—क्षत्रिय (क्षत्राई)—अग्रकस्सोई—नीराइअन सबक—कौटिल्य अर्थशास्त्र में प्रजातन्त्र राज्य—प्रजातन्त्र राज्यों की विशेषताएँ—मौर्य काल में प्रजातन्त्र राज्यों का ह्रास। पृष्ठ १५० से १५४

नवाँ अध्याय

मौर्य साम्राज्य का शासन पद्धति

सेना विभाग—सैनिक मंडल—सेना की भर्ती—सेना के अस्त्र शस्त्र। दुर्ग या किले—नगर-शासन विभाग—नगर शासक मंडल—प्रान्तीय शासन विभाग—गुप्तचर विभाग—कृषि विभाग—नहर विभाग—व्यापार और वाणिज्य विभाग—नौ विभाग—शुल्क विभाग (चुंगी का महकमा)—आकर विभाग (खान का महकमा)—सूत्र विभाग (बुनाई का महकमा)—सूरा विभाग (आबकारी का महकमा)—पशु-रक्षा विभाग—मनुष्य-गणना विभाग—आय व्यय विभाग—परराष्ट्र विभाग—न्याय विभाग। पृष्ठ १५५ से १६९

दसवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल के राजनीतिक विचार

एक तन्त्र राज्य-प्रणाली—राजा की आवश्यकता—मात्स्य न्याय—सामाजिक समय का पट्टा—राजा नर रूप में देवता है—राजा पर अंकुश या दबाव—प्रजातन्त्र राज्य-प्रणाली—व्यापारिक संघ—राजनीतिक संघ—संघों या गण राज्यों की शासन-व्यवस्था—परिषद्—परिषद् में प्रस्ताव का नियम—बहुमत—अनुपस्थित सभ्यों की राय—

अधिवेशन के लिये कम से कम उपस्थिति का कोरम—गण-पूरक या द्विर। पृष्ठ १९० से २००

ग्यारहवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल की सामाजिक अवस्था

चार वर्ण—ईश्वर का भाव—समान वर्ण में विवाह सम्बन्ध—जातियों की उपजाति—क्षत्रिय—ब्राह्मण—वैश्य—शूद्र—मेगास्थिनीज़ के अनुसार सामाजिक दशा—ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार सामाजिक दशा। पृष्ठ २०८ से २२१

बारहवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल की सांपत्तिक अवस्था

ग्रामों की सांपत्तिक अवस्था—नगरों की सांपत्तिक अवस्था—व्यापार और वाणिज्य—व्यापारिक मार्ग—छठवीं शताब्दी—व्यापारियों में सहयोग। पृष्ठ २२२ से २४२

तेरहवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल का साहित्य

भाषा और अक्षर—प्राचीन बौद्ध काल का पाली साहित्य—सुत्त-पिटक—विनय पिटक—अभिधम्म पिटक—प्राचीन बौद्ध काल का संस्कृत साहित्य। पृष्ठ २४३ से २५३

चौदहवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल की शिल्प-कला

चतुर्दश शिलालेख—दो कलिंग शिलालेख—लघु शिलालेख—आठ शिलालेख—सप्त स्तंभलेख—लघु स्तंभलेख—दो तराई स्तंभलेख—तीन गुहालेख। पृष्ठ २५४ से २६८

द्वितीय खण्ड

पहला अध्याय

राजनीतिक इतिहास

मौर्य काल के बाद देशी राजवंश—शुंग वंश—शुंग वंश की स्थापना—शुंग राजाओं का राज्य विस्तार—मिलिन्द (मिनैन्डर) का आक्रमण—खारवेल का हमला—पुष्यमित्र का अश्वमेध यज्ञ—बौद्धों पर पुष्यमित्र के अत्याचार—पुष्यमित्र के वंशज—काण्व वंश—वसुदेव और उसके उत्तराधिकारी—आन्ध्र वंश—आन्ध्रों का सब से प्राचीन उल्लेख—सिमुक और कृष्ण—हाल शातवाहन—आन्ध्र राज्य का अधःपतन—मौर्य काल के बाद विदेशी राजवंश—यवन (यूनानी) राजवंश—सिकन्दर और पोरुकस के आक्रमण—एन्टिओकस थीअस—टिओडोटस प्रथम—यूथिडेमस—काबुल पर एन्टिओकस थीअस का हमला—भारत में हमीअस का अधिकार—यूक्रेटाइडीज के उत्तराधिकारी—मिलिन्द (मिनेन्डर)—एन्टिएल्काइडस—हर्मेअस—भारतवर्ष पर यूनानी सभ्यता का प्रभाव—शक (सीथियन)—शकों का आगमन—उत्तरी क्षत्रप—पश्चिमी क्षत्रप—भूमक—नहपान—चष्टन—रुद्रदामन्—क्षत्रपों का अधःपतन—पार्थिव (पार्थियन) राजवंश—पार्थिव लोग कौन थे—मिथ्रेडेटस प्रथम—मोअस—एजेस प्रथम—गोंडोफ़र्निस—कुषण राजवंश—कुषणों का पूर्व इतिहास—कैडफाइसिज प्रथम—कैडफ़ाइसिज द्वितीय—कनिष्क—कनिष्क-काल—कनिष्क का राज्य-विस्तार—कनिष्क का धर्म—कनिष्क के समय की बौद्ध महासभा—कनिष्क की मृत्यु—वासिष्क—हुविष्क—वासुदेव और कुषण साम्राज्य का अन्त—ईसा की तीसरी शताब्दी अंधकारमय। पृष्ठ २७१ से ३०८

दूसरा अध्याय

प्रजातन्त्र या गण राज्य

यौधेय गण—मालव गण—आर्जुनायन—औदुम्बर—कुणिन्द—कुलि—सिबि। पृष्ठ २०९ से २१७

तीसरा अध्याय

धार्मिक दशा

बौद्ध धर्मकी स्थिति—बौद्धों पर पुष्यमित्र का अत्याचार—पश्चिमोत्तर भारत में बौद्ध महासभा—महायान संप्रदाय की उत्पत्ति—महायान और भक्ति-मार्ग—महायान पर भगवद्गीता का प्रभाव—महायान पर विदेशियों का प्रभाव—हीनयान और महायान में भेद—ब्राह्मण धर्म की स्थिति—शुंग वंशी राजाओं के समय ब्राह्मण धर्म—यवन राजाओं के समय ब्राह्मण धर्म—कुषण राजाओं के समय ब्राह्मण धर्म। पृष्ठ २१८ से २३०

चौथा अध्याय

सामाजिक दशा

सामाजिक उथल पुथल—जाति भेद—ब्राह्मणों का प्रभाव।
पृष्ठ २३१ से २३३

पाँचवाँ अध्याय

सांपत्तिक दशा

आन्ध्र राजाओं के समय दक्षिणी भारत का व्यापार—कुषण राजाओं के समय उत्तरी भारत का व्यापार। पृष्ठ २३४ से २३७

छठा अध्याय

साहित्यिक दशा

[illegible]—शुंग और काण्व राजाओं के समय में संस्कृत [illegible] के समय में प्राकृत साहित्य—कनिष्क के [illegible] की उन्नति—अन्य शास्त्रों [illegible]
पृष्ठ ३३८ से ३४४

सातवाँ अध्याय

[illegible]

[illegible]—[illegible] मूर्तिकारी—[illegible] की प्रधान घटनाएँ—[illegible]
पृष्ठ ३४५ से ३५४

आठवाँ अध्याय

[illegible] पृष्ठ ३५५ से ३६०
पृष्ठ ३६१ से ३६६

[illegible]

[illegible] पृष्ठ ३६७ से ३७०
[illegible] पृष्ठ ३७० से ३७१

[illegible]

[illegible] विश्वविद्यालय।
पृष्ठ ३७१ से ३७९

[illegible] की समय तालिका
पृष्ठ ३८० से ३८९
पृष्ठ १ से ८

प्राक्कथन

पं० जनार्दन भट्ट कृत यह ग्रंथ हिंदी भाषा के ऐतिहासिक साहित्य भांडार में उच्च स्थान ग्रहण करेगा। इस ग्रंथ के निर्माण में कितनी विद्वत्ता और कितने परिश्रम से काम लिया गया है, यह पाठकों को इसके पढ़ने से ही विदित होगा। प्रसिद्ध इतिहासकार गिबन का यह नियम था कि वह नई पुस्तक पढ़ने के पहले विचार कर लेता था कि इस विषय की मुझे कितनी जानकारी है। पढ़ने के बाद वह फिर विचार करता था कि अमुक पुस्तक से मैंने कितनी नई बातें सीखीं। यदि प्रस्तुत ग्रंथ के पाठक इस नियम का अवलम्बन करेंगे, तो उन पर इस ग्रंथ का महत्व अच्छी तरह प्रकट हो जायगा।

भारतवर्ष के इतिहास में बौद्ध युग अत्यंत उज्ज्वल और गौरवपूर्ण है। इस युग में धर्म, आचार, साहित्य, कला, उद्योग, व्यापार, राजनीतिक संघटन आदि सभी विषयों में देश ने आश्चर्यजनक उन्नति की थी। भारतीय इतिहास के अन्य युगों में, तथा वर्तमान युग में भी, एक गुण की कमी दिखाई देती है। हमारे देश ने संघटन शक्ति का यथोचित विकास नहीं किया। यदि दूसरों के सामने हमें कई बार सिर झुकाना पड़ा है, तो विद्या, बुद्धि या धन की कमी के कारण नहीं, किंतु संघटन की कमी के कारण ही। बौद्ध काल में देश ने राजनीतिक और साम्प्रदायिक संघटन का उत्तम

परिचय दिया था। इसी गुण के सहारे हमारे देश ने संसार पर प्रगाढ़ प्रभाव डाला था। आज भी स्याम, लंका, तिब्बत, चीन, जापान, मंगोलिया, कोरिया आदि देशों में बौद्ध धर्म माना जाता है। यद्यपि इन देशों की मानसिक और सामाजिक स्थिति ने बौद्ध धर्म का स्वरूप बहुत कुछ बदल दिया है तथापि आज भी उनके मुख्य धार्मिक सिद्धान्तों और आचार शास्त्रों पर भारत की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इधर पश्चिमी एशिया में पहुँचकर बौद्ध धर्म ने ईसाई धर्म के जन्म और सिद्धान्तों पर बहुत असर डाला। ईसाई इतिहास-कार यह बात स्वीकृत नहीं करते, [illegible] स्टाइन [illegible] धार्मिक [illegible] में बौद्ध धर्म का मिलान करने पर यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाती है कि सम्राट अशोक के भेजे हुए धर्म प्रचारकों का श्रम व्यर्थ नहीं गया था।

यह ऐसा ही महत्वपूर्ण समय था जिसका चित्र इस ग्रन्थ में खींचा गया है। सच्चा इतिहास-कार राजाओं के जन्म मरण तथा युद्धों की तिथियों का वर्णन नहीं है। सच्चे इतिहास-कार का कर्तव्य यह है कि वह भूत-पर्व राजनीतिक सामाजिक साहित्यिक धार्मिक आर्थिक आदि सभी अवस्थाओं का सुसम्बद्ध वर्णन करे, परिवर्तनों का उल्लेख करे और उनके कारणों की खोज करे। भट्टजी ने इस आदर्श तक पहुँचने की चेष्टा की है। आशा है कि शीघ्र ही आप भारतीय इतिहास के अन्य समयों की विवेचना भी इसी प्रणाली के अनुसार करेंगे।

प्रयाग विश्वविद्यालय।
१—१२—१९२२

वेणीप्रसाद

भूमिका

प्राचीन भारत का इतिहास समय के अनुसार तीन बड़े बड़े भागों में बाँटा जा सकता है; यथा—(१) वैदिक काल; (२) बौद्ध काल; और (३) पौराणिक काल। वैदिक काल का प्रारंभ कब से हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। मैक्स-म्यूलर, विल्सन और ग्रिफिथ साहब ने वैदिक काल का प्रारंभ मोटे तौर पर ई० पू० २००० या १५०० वर्ष से, जैकोबी महाशय ने ई० पू० ४००० वर्ष से और तिलक महाराज ने ई० पू० ५००० या ४५०० वर्ष से माना है। वैदिक काल का प्रारंभ चाहे जब से हुआ हो, पर हम निश्चित रूप से इतना अवश्य कह सकते हैं कि वैदिक काल का अंत ई० पू० छठी शताब्दी में बौद्ध धर्म के उदय से होता है। अतएव भारतीय इतिहास का बौद्ध काल ई० पू० छठी शताब्दी से लेकर ईसा के बाद चौथी शताब्दी तक माना जाता है। इसके बाद गुप्त-वंशी राजाओं के समय से बौद्ध धर्म का ह्रास और पौराणिक धर्म का विकास होने लगता है। अतएव चौथी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक, अर्थात् मुसलमानों की विजय तक, पौराणिक काल कहा जाता है।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी से लेकर ईसा के बाद चौथी शताब्दी तक, अर्थात् मोटे तौर पर १००० वर्ष का समय, भारतवर्ष के

इतिहास में, इसलिये बौद्ध काल कहलाता है कि इस काल में अन्य धर्मों की अपेक्षा बौद्ध धर्म की प्रधानता थी। इस काल में जितने बड़े बड़े राजा और सम्राट् हुए, वे प्रायः बौद्ध धर्मावलंबी ही थे। इस काल के जितने शिलालेख, मंदिरों और स्तूपों के जितने भग्नावशेष और जितनी मूर्तियाँ मिली हैं, वे अधिकतर बौद्ध धर्म संबंधी हैं। इस काल के शिलालेखों में जितने व्यक्तियों के नाम आये हैं, जितने देवी-देवताओं और दोनों के उल्लेख हुए हैं, उनमें से अधिकतर बौद्ध धर्म संबंधी हैं। इस काल के अधिकतर शिलालेख ब्राह्मणों की भाषा संस्कृत में नहीं, बल्कि जन साधारण की भाषा प्राकृत में हैं। पर इसके बाद गुप्त काल से लेकर अधिकतर शिलालेख संस्कृत में ही मिलते हैं। गुप्त काल के प्रारंभ में शिलालेखों में ब्राह्मणों, हिन्दू देवी-देवताओं, हिन्दू मंदिरों और यज्ञों का ही अधिकतर उल्लेख आता है। यहाँ तक कि पाँचवीं शताब्दी के तीन-चौथाई शिलालेख हिंदू धर्म संबंधी ही हैं। पर इससे यह न समझ लेना चाहिए कि बौद्ध काल में हिंदू या ब्राह्मण धर्म बिलकुल लुप्त हो गया था। उस समय भी यज्ञ आदि होते थे, पर अधिक नहीं। हिंदू देवी-देवताओं की पूजा भी प्रचलित थी, पर पहले की तरह नहीं। इसका प्रमाण पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ, बेसनगर के गरुड़-ध्वज, कैडफाइसिस द्वितीय तथा वासुदेव के सिक्कों और बासिम के मथुरावाले स्तूप-स्तंभ से मिलता है। तात्पर्य यह कि बौद्ध धर्म की प्रधानता होने के कारण ही यह काल "बौद्ध काल" के नाम से पुकारा जाता है।

इस काल का इतिहास दो प्रधान भागों में बाँटा जा सकता है। एक भाग में बुद्ध के जन्म-समय से लेकर मौर्य साम्राज्य के

अंत तक का इतिहास है; और दूसरे भाग में मौर्य साम्राज्य के अंत से लेकर गुप्त साम्राज्य के पहले तक का इतिहास आता है। इसी लिये यह ग्रंथ भी दो खंडों में बाँटा गया है; और प्रत्येक खंड में उस समय की राजनीति, समाज, धर्म, संपत्ति, साहित्य, शिल्प-कला आदि का वर्णन यथासंभव विस्तारपूर्वक किया गया है। बौद्ध काल के दो विभाग इसलिये किये गये हैं कि पहले विभाग की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा से दूसरे विभाग की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा में बड़ा अंतर आ गया था।

इस ग्रंथ का उद्देश्य केवल उस समय के राजाओं और उनके कामों का ही वर्णन करना नहीं, बल्कि पाठकों के सामने तत्कालीन भारत के समाज, सभ्यता, साहित्य, शिल्प-कला आदि का चित्र रखना भी है। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और शिल्प-कला संबंधी दशा कैसी थी, यह पाठकगण इस ग्रंथ से जान सकते हैं। इस ग्रंथ के लिखने में अपनी कल्पना से बहुत कम काम लिया गया है और कोई निराधार बात नहीं लिखी गई है। बौद्ध काल के संबंध में दूसरे लेखकों ने समय समय पर जो बातें लिखी हैं, और जो अब तक हमारे देखने आई हैं, उन्हीं को हमने इस ग्रंथ में एकत्र करने का प्रयत्न किया है। जहाँ जहाँ जिस लेखक या ग्रंथ से सहायता ली गई है, वहाँ वहाँ उसका उल्लेख भी कर दिया गया है। इस ग्रंथ के लिखने में जिन लेखों और ग्रंथों से सहायता ली गई है, उन की एक सूची भी पुस्तक के आरंभ में दे दी गई है।

अंत में हम प्रयाग विश्वविद्यालय के इतिहासाचार्य प्रोफेसर

वेणीप्रसाद जी एम० ए० को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते। आपने इस पुस्तक के लिखने में जो सहायता दी है, उसके लिये हम आपके चिर-कृतज्ञ रहेंगे। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि बिना आपकी सहायता के इस पुस्तक का लिखा जाना असंभव था। अनेक कार्यों के रहते हुए भी आपने यह पुस्तक पढ़कर इसमें कई स्थलों पर संशोधन और परिवर्तन किये हैं। इसके लिये हम आपको जितना धन्यवाद दें, थोड़ा है। अपने मित्र बा० नरेंद्र-देव एम० ए०, बाइस प्रिंसिपल, काशी विद्यापीठ, को भी हम धन्यवाद देते हैं। आपसे भी हमें इस पुस्तक के लिखने में बड़ी सहायता और उत्साह मिला है।

लेखक।

बौद्ध-कालीन भारत

प्रथम खण्ड

(बौद्ध काल के उदय से मौर्य साम्राज्य के अन्त तक)

साहित्य-रत्न-माला

में

सचमुच

केवल रत्न ही प्रकाशित होते हैं।

यदि आप पारखी होंगे,

तो अवश्य इसके स्थायी ग्राहक बनेंगे।

बौद्ध-कालीन भारत

पहला अध्याय

बौद्ध-कालीन इतिहास की सामग्री

बौद्ध-कालीन भारत के इतिहास की सामग्री मुख्यतया तीन भागों में बाँटी जा सकती है; यथा—(१) पाली और संस्कृत के ग्रन्थ; (२) विदेशी इतिहास-कारों और यात्रियों के ग्रन्थों में आये हुए भारत सम्बन्धी उल्लेख; और (३) शिलालेख तथा सिक्के आदि। पहले हम इन्हीं के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक और उपयोगी बातें बतलाते हैं।

(१) पाली, प्राकृत और संस्कृत के ग्रंथ

जातक—बुद्ध के जन्म समय की तथा बुद्ध के जीवन-काल की भारतवर्ष की राजनीतिक, सामाजिक और सांपत्तिक दशा का बहुत कुछ विवरण जातक-कथाओं में मिलता है। जातक कथाएँ आजकल जिस रूप में मिलती हैं, उस रूप में वे कदाचित् इतनी पुरानी न हों, पर जिन घटनाओं का हवाला उनमें है, वे अवश्य ही ई० पू० छठी और पाँचवीं शताब्दी की हैं।

बौद्धधर्म के प्राचीन ग्रंथ—त्रिपिटक नाम के पाली ग्रंथों से

बुद्ध भगवान् के समय की भारत की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है। आगे चलकर इन ग्रंथों का विस्तृत वर्णन किया जायगा। ये ग्रंथ कदाचित् बुद्ध के निर्वाण के कुछ ही समय बाद बने थे। इनसे हमें गौतम बुद्ध के बाद की कुछ शताब्दियों का प्रामाणिक इतिहास मिलता है। बौद्ध धर्म के अधिकतर पाली ग्रंथ लंका से प्राप्त हुए हैं। बौद्ध धर्म के अधिकतर संस्कृत ग्रंथ कनिष्क के समय के तथा उसके बाद के हैं। ये प्रायः पाली ग्रंथों के अनुवाद हैं, या उनके आधार पर लिखे गये हैं; और अधिकतर नेपाल, तिब्बत, चीन, जापान और चीनी तुर्किस्तान में पाये गये हैं।

जैन धर्म के सूत्र-ग्रंथ—जैन धर्म के सूत्र-ग्रंथ ईसा पूर्व तीसरी या चौथी शताब्दी के कहे जाते हैं; पर कदाचित् ये इससे भी पुराने हैं। इनसे प्राचीन बौद्ध काल के विषय में बहुत सी ऐतिहासिक बातें मालूम हुई हैं। ये ग्रंथ प्राचीन अर्ध-मागधी भाषा में हैं।

कौटिलीय अर्थशास्त्र—चाणक्य अथवा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मौर्य साम्राज्य के शासन के सम्बन्ध में बहुत सी बहुमूल्य बातों का पता लगा है। कहा जाता है कि चाणक्य चंद्रगुप्त मौर्य का प्रधान मंत्री था। मेगास्थिनीज ने भारतवर्ष का जो वर्णन किया है, उसमें और अर्थ शास्त्र में लिखी हुई बातों में बहुत कुछ समानता है।

पतंजलि का महाभाष्य—पतंजलि शुंग वंशी राजा पुष्यमित्र के समकालीन थे। उनके महाभाष्य में जहाँ तहाँ उस समय का थोड़ा बहुत उल्लेख आया है।

पुराणों की राज-वंशावली—अठारह पुराणों में से पाँच पुराणों—वायु, मत्स्य, विष्णु, ब्रह्माण्ड और भागवत—में बौद्ध-कालीन राजाओं की क्रमबद्ध सूची दी गई है। बहुत से युरोपीय लेखक पुराणों में दी हुई राजवंशों की सूची को प्रामाणिक नहीं मानते और पुराणों को बहुत प्राचीन नहीं समझते। पर पुराणों में दी हुई राज-वंशावलियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से बहुत सी ऐतिहासिक बात का पता लगता है। पुराण किसी न किसी रूप में ई० पू० चौथी शताब्दी में अवश्य वर्तमान थे; क्योंकि कौटिलीय अर्थ शास्त्र में पुराण का उल्लेख आया है। बहुत से लोग पुराणों को और भी अधिक प्राचीन मानते हैं; और कुछ लोगों ने तो उपनिषदों तक में उनका उल्लेख ढूँढ निकाला है।

दीपवंश और महावंश—लंका के इन दो बौद्ध ग्रंथों में बौद्ध-कालीन राजवंशों और विशेषतः मौर्य वंश के संबंध की कई दंतकथाएँ लिखी हुई मिलती हैं। ये दोनों ग्रंथ पाली भाषा में हैं। इनमें से "दीपवंश" कदाचित् ईसवी चौथी शताब्दी में और "महावंश" कदाचित् ईसवी पाँचवीं शताब्दी में रचा गया था।

मुद्राराक्षस—मुद्राराक्षस में नन्द वंश और चंद्रगुप्त के बारे में बहुत कुछ पता लगता है। इसमें नन्द वंश के नाश, चंद्रगुप्त के राज्यारोहण तथा चाणक्य की कुटिल नीति का बहुत अच्छा वर्णन मिलता है। श्रीयुक्त काशीप्रसाद जी जायसवाल के मत से यह नाटक चंद्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) के समय में, अर्थात् पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में, रचा गया था।*

* इंडियन एन्टिक्वेरी, जिल्द ४१, १९१२, पृ० २६५–७.

काल चाहे जो हो, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि इसके कथानक की घटनाएँ सच्ची हैं।

राजतरंगिणी—कश्मीर के कल्हण पंडित का रचा हुआ राजतरंगिणी नामक ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्व का है। संस्कृत साहित्य में यही एक ऐसा ग्रंथ है, जिसे हम ठीक ठीक अर्थ में इतिहास कह सकते हैं। इसका रचना-काल ईसवी बारहवीं शताब्दी है। इसमें बौद्ध काल के समय की बहुतसी प्राचीन बातों का पता लगता है।

(२) विदेशी इतिहासकारों और यात्रियों के ग्रंथों में भारत के उल्लेख

सिकंदर के समकालीन यूनानी इतिहास-लेखक—सिकंदर के समय तक भारतवर्ष युरोप की दृष्टि से छिपा हुआ था। पहले पहल सिकंदर के आक्रमण से ही युरोप के साथ भारतवर्ष का संबंध हुआ। सिकंदर के साथ कई इतिहास-लेखक भी थे, जिन्होंने तत्कालीन भारत का वर्णन अपने इतिहास-ग्रंथों में किया है। कई चीनी यात्रियों के यात्रा-विवरण भी इस संबंध में बहुत महत्व रखते हैं। यहाँ हम उनमें से कुछ मुख्य लेखकों का ही परिचय कराते हैं।

मेगास्थिनीज़—सिकंदर की मृत्यु के लगभग बीस वर्ष बाद सीरिया और मिस्र के राजाओं ने मौर्य साम्राट् के दरबार में अपने अपने राजदूत भेजे थे। इन राजदूतों ने भारतवर्ष का जो वर्णन किया है, उसका कुछ भाग बहुत से यूनानी और रोमन लेखकों के ग्रंथों में उद्धृत किया हुआ मिलता है। इन राजदूतों में

सीरिया के राजा सेल्यूकस के राजदूत मेगास्थिनीज का नाम विशेष-तया उल्लेखनीय है। मेगास्थिनीज कई वर्षों तक चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में था। वहाँ रहकर उसने अपना समय भारत की तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक दशा का ऐतिहासिक विवरण लिखने में लगाया था। उसके वर्णन का केवल कुछ ही अंश—और वह भी दूसरों के ग्रंथों में—मिलता है।

एरियन—ईस्वी दूसरी शताब्दी में एरियन नाम का एक यूनानी-रोमन अफसर हो गया है। उसने भारतवर्ष का तथा सिकंदर के आक्रमण का बहुत अच्छा वर्णन किया है। उसने अपना इतिहास लिखने में सिकंदर के उच्च राज-कर्मचारियों के लिखे हुए वर्णनों और यूनानी राजदूतों के लेखों से बहुत कुछ सहायता ली है। ई० पू० चौथी शताब्दी का इतिहास जानने के लिये एरियन के ग्रंथ बहुत महत्व के हैं*।

फाहियान और ह्वेनत्सांग—फाहियान ई० पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय और ह्वेनत्सांग ई० सातवीं शताब्दी में हर्ष के समय चीन से भारतवर्ष में यात्रा करने के लिये आये थे। उन्होंने तत्कालीन भारत का जो कुछ वर्णन

* यूनानी और रोमन इतिहास-लेखकों तथा यात्रियों ने भारत का जो कुछ वर्णन यहाँ नहीं किया है, उसे एकत्र करके मि० मैक क्रिन्डिल ने निम्नलिखित छः खंडों में अनुवाद किया है—(1) Ktesias. (2) Indika of Megasthenes and Arrian. (3) Periplus of the Erythracan Sea. (4) Ptolemy's Geography (5) Alexander's Invasion. (6) Ancient India, as described by other Classical Writers.

किया है, वह तो किया ही है; साथ ही अपने से पूर्व काल की भी बहुत सी बातों का उल्लेख किया है, जिनसे बौद्ध काल का बहुत सा इतिहास विदित होता है।

(३) शिलालेख तथा सिक्के आदि

शिलालेख—बौद्ध काल का इतिहास जानने के लिये शिलालेखों से भी बहुत सहायता मिलती है। यदि अनेक राजाओं के शिलालेख अब तक सुरक्षित न रहते, तो बहुत से राजाओं के नामों और वंशों का पता भी हम लोगों को न लगता। इनमें से सब से अधिक महत्व के शिलालेख मौर्य सम्राट् अशोक के हैं। अशोक का अधिकतर इतिहास उसके शिलालेखों से ही जाना जाता है। कुल मिलाकर उसके तीस से अधिक शिलालेख हैं, जो चट्टानों, गुफाओं की दीवारों और स्तम्भों पर खुदे हुए मिलते हैं। अशोक के शिलालेख भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों में, हिमालय से लेकर मैसूर तक और बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक, पाये जाते हैं। अशोक के पहले का कोई शिलालेख अब तक नहीं मिला है। अशोक के बाद बौद्ध काल के असंख्य शिलालेख भारतवर्ष में चारों ओर पाये गये हैं, जिनका उल्लेख यथा स्थान किया जायगा।

सिक्के—बौद्ध काल के इतिहास की खोज में सिक्कों का महत्व अन्य ऐतिहासिक सामग्री से कुछ कम नहीं है। सिक्कों की सहायता से बौद्ध काल के कई अंधकाराच्छन्न भागों का क्रमबद्ध और विस्तृत इतिहास लिखा जा सकता है। प्राचीन भारतवर्ष के यूनानी (इंडो-

ग्रीक) तथा पार्थिव (इंडो-पार्थियन) राजाओं का इतिहास तो केवल सिक्कों के ही आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

प्राचीन बौद्ध स्थानों के भग्नावशेष और मूर्तियाँ—प्राचीन बौद्ध स्थानों के भग्नावशेषों से बौद्ध काल का राजनीतिक इतिहास जानने में कुछ विशेष सहायता नहीं मिलती, पर हाँ, उनसे उस समय की गृह-निर्माण-कला का बहुत कुछ पता अवश्य लगता है। इसी प्रकार बौद्ध काल की मूर्तियाँ देखने से उस समय की शिल्प-कला, समाज तथा धर्म का भी कुछ कुछ ज्ञान अवश्य हो जाता है।

इसी सामग्री के आधार पर आगे के अध्यायों में बौद्ध काल का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा शिल्प-कला संबंधी इतिहास पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न किया जायगा।

दूसरा अध्याय

बुद्ध के जन्म-समय में भारत की दशा

संसार के इतिहास में ई० पू० छठी शताब्दी चिर-स्मरणीय है। इसी शताब्दी के लगभग भारत में भगवान् बुद्ध का, चीन में कनफ्यूशी का और ईरान में जरथुस्त्र का जन्म हुआ था। इस समय सब ओर लोगों के मन में नई नई शंकाएँ और नये नये विचार उत्पन्न हो रहे थे। उन दिनों प्रचलित धर्म के प्रति अश्रद्धा और अविश्वास फैला हुआ था। लोग नये नये भावों और विचारों से प्रेरित होकर परिवर्तन के लिये लालायित हो रहे थे। वे एक ऐसे पुरुष की प्रतीक्षा कर रहे थे, जो अपने गम्भीर विचारों से इनकी शंकाओं का समाधान करता, जो अपने सदुपदेश से इनकी आत्मिक पिपासा शान्त करता और जो इनके सामने एक ऊँचा आदर्श रखकर इनके जीवन को उन्नत करता। जब समाज की ऐसी दशा होती है, तब किसी महापुरुष का जन्म या अवतार अवश्य होता है। वह समाज के सामने अपने जीवन का आदर्श रखता है। उस समय के लोगों की आशाएँ और अभिलाषाएँ उसमें प्रतिबिम्बित होती हैं। वह अपने समय के लोगों का मूर्तिमान आदर्श होता है। अतएव किसी महापुरुष के जीवन और महत्त्व को ठीक ठीक समझने के लिये यह आवश्यक है कि पहले हम तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा से पूरी

तरह परिचित हो जायँ। किसी महापुरुष को उसके समय से अलग करके देखिये, तो उसका जीवन बहुत कुछ अर्थ-रहित मालूम पड़ेगा और उनके काम निरर्थक प्रतीत होंगे। इसलिये यदि हम भगवान् बुद्ध के जीवन को ठीक ठीक समझना चाहते हों, तो यह आवश्यक है कि हम अच्छी तरह से यह जान लें कि उनके समय में भारत की क्या दशा थी। इसी उद्देश्य से यहाँ बुद्ध के जन्म-समय की भारत की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा का कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है।

राजनीतिक दशा

उस समय भारतवर्ष तीन बड़े बड़े भागों में बँटा हुआ था। इनमें से बीचवाला भाग "मज्झिम देश" (मध्य देश) कहलाता था। ग्रन्थों में अनेक स्थानों में "मज्झिम देश" का उल्लेख आया है; पर [illegible] उल्लेखों से यह पता नहीं लगता कि मध्य देश कहाँ से कहाँ तक था। हाँ, मनुस्मृति अध्याय २, श्लो० २१ में निश्चित रूप से मध्य देश की सीमा लिखी हुई है। उसमें लिखा है—"हिमालय और विन्ध्याचल के बीच तथा सरस्वती नदी के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम में जो देश है, उसे मध्य देश कहते हैं"। इस मध्य देश के उत्तर का भाग उत्तरापथ तथा दक्षिण का भाग दक्षिणापथ कहलाता था। इस प्रकार कुल देश तीन बड़े बड़े प्रदेशों में बँटा हुआ था। अब आइये, देखें कि उस समय की राजनीतिक दशा कैसी थी।

उस समय देश में सोलह राज्य (सोहरा महाजनपद) थे,

जिनके नाम नीचे लिखे जाते हैं—

(१) अंगा (अंग-राज्य)	(९) कुरू (कुरु-राज्य)
(२) मगधा (मगध-राज्य)	(१०) पंचाला (पंचाल-राज्य)
(३) कासी (काशी-राज्य)	(११) मच्छा (मत्स्य-राज्य)
(४) कोसला (कोशल-राज्य)	(१२) सूरसेना (शूरसेन-राज्य)
(५) वज्जी (वृज्जियों का राज्य)	(१३) अस्मका (अश्मक-राज्य)
(६) मल्ला (मल्लों का राज्य)	(१४) अवन्ती (अवन्ति-राज्य)
(७) चेती (चेदि-राज्य)	(१५) गन्धारा (गान्धार-राज्य)
(८) वंसा (वत्स-राज्य)	(१६) कम्बोजा (कम्बोज-राज्य)

ऊपर जिन राज्यों की सूची दी गई है, उनके संबंध में ध्यान देने लायक पहली बात यह है कि वे देशों के नाम नहीं, बल्कि जातियों के नाम हैं। बाद को इन्हीं जातियों के नाम पर देशों का नाम भी पड़ गया था। दूसरी बात यह है कि इनमें से "वज्जी" और "मल्ला" ये दोनों जाति के नाम नहीं, बल्कि कुल के नाम थे। तीसरी बात यह है कि इनके ऊपर, या इनसे बढ़कर, कोई शक्ति ऐसी न थी जो इन पर अपना आतंक जमा सकती या इन को एक साम्राज्य के अन्दर ला सकती। इनमें से प्रत्येक का वर्णन नीचे दिया जाता है—

(१) अंगों का राज्य—अंग-राज्य, मगध-राज्य के बिलकुल बगल में था। दोनों राज्यों के बीच केवल एक नदी का अन्तर था। इस नदी का नाम "चंपा" था। इसी नदी पर चंपा नगरी बसी हुई थी, जो अंग-राज्य की राजधानी थी। प्राचीन चंपा नगरी वर्तमान भागलपुर के निकट थी। अंग पहले स्वतंत्र राज्य था;

पर बाद को वह मगध की अधीनता में चला गया था।

(८) मगधों का राज्य—मगध-राज्य वर्तमान जिला बिहार के स्थान पर था। इसकी उत्तरी सीमा कदाचित् गंगा नदी, पूर्वी सीमा चंपा नदी, दक्षिणी सीमा विंध्य पर्वत और पश्चिमी सीमा सोन नदी थी। इसकी राजधानी राजगृह (वर्तमान राजगिर) थी। राजगृह के दो भाग थे। इसका प्राचीन भाग गिरिव्रज कहलाता था। गिरिव्रज एक पहाड़ी पर बसा हुआ था। बाद को राजा बिंबिसार ने, जो बुद्ध भगवान् के समकालीन थे, इस प्राचीन नगर को उजाड़कर एक नये राजगृह की नींव डाली। नवीन राजगृह पहाड़ी के नीचे बसाया गया। बुद्ध के निर्वाण के बाद मगध की राजधानी राजगृह से हटाकर पाटलिपुत्र में स्थापित की गई थी।

(९) काशी का राज्य—बुद्ध के जन्म से पहले "कासी रट्ठ" (काशी-राष्ट्र) बिलकुल स्वतंत्र था; पर बुद्ध-जन्म के बाद यह राज्य कोशल-राज्य में मिला लिया गया था। काशी-राष्ट्र की राजधानी बाराणसी (बनारस) थी। काशी उस समय नगर का नाम नहीं, बल्कि राज्य का नाम था। जातकों में लिखा है कि उस समय इस राज्य का विस्तार दो हजार वर्ग मील था।

(१०) कोशलों का राज्य—कोशल-राज्य की राजधानी "सावत्थी" (श्रावस्ती) थी। प्राचीन श्रावस्ती नगर वर्तमान गोंडा और बहराइच जिलों की सीमा पर सहेत महेत नामक ग्राम के स्थान पर था। कोशल राज्य का एक दूसरा प्रधान नगर साकेत था। जातकों से पता लगता है कि बुद्ध के कुछ पहले कोशल की राजधानी साकेत हो गई थी।

(५) वृजियों का राज्य—वृजी-राज्य में प्रायः आठ स्वतंत्र राज-कुल मिले हुए थे। उनमें से "लिच्छवि" और "विदेह" राज-कुलों की प्रधानता थी। वृजियों की राजधानी "वेसालि" (वैशाली) थी, जो वर्तमान मुजफ्फरपुर जिले के वसाढ़ नामक स्थान पर थी।

(६) मल्लों का राज्य—चीनी यात्री ह्वेनत्सांग के अनुसार यह पहाड़ी राज्य शाक्य-राज्य के पूर्व और वृजी-राज्य के उत्तर में था। पर कुछ लोगों का मत है कि यह राज्य वृजी के पूर्व और शाक्यों के दक्षिण में था।

(७) चेदियों का राज्य—जातकों में "चेतिय-रट्ठ" या "चेत-रट्ठ" का उल्लेख आया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि "चेतिय" या "चेत" संस्कृत के "चैद्य" या "चेदि" का अपभ्रंश है। चेदि-राज्य मोटे तौर पर वर्तमान बुन्देलखण्ड के स्थान पर था।

(८) वत्सों का राज्य—वत्स-राज्य की राजधानी कौशांबी थी। प्राचीन कौशांबी नगरी प्रयाग से प्रायः ३० मील दूर दक्षिण की ओर यमुना नदी के किनारे पर वर्तमान कोसम ग्राम के पास थी। यह राज्य अवंती राज्य के उत्तर में था।

(९) कुरुओं का राज्य—कुरु-राज्य की राजधानी दिल्ली के पास "इंदपट्ट" (इंद्रप्रस्थ) नगर में थी। इस राज्य के पूर्व में पंचाल-राज्य और दक्षिण में मत्स्य-राज्य था। इस राज्य के उत्तर-कुरु और दक्षिण-कुरु नाम के दो विभाग थे। कुरु-राज्य का फैलाव २००० वर्ग मील था।

(१०) पंचालों का राज्य—पंचाल-राज्य भी दो थे—एक उत्तर-पंचाल और दूसरा दक्षिण-पंचाल। पंचाल-राज्य कुरु राज्य के पूर्व में पहाड़ और गंगा के बीच में था। उत्तरी पंचाल की

राजधानी "कांपिल्ल" (कांपिल्य) और दक्षिणी पंचाल की राजधानी कन्नौज थी। प्राचीन कांपिल्य नगर कदाचित् गंगा के किनारे वर्तमान बदाऊँ और फर्रुखाबाद के बीच में था।

(११) मत्स्यों का राज्य—महाभारत के समय में मत्स्य राज्य राजा विराट के अधिकार में था। वर्तमान अलवर, जयपुर और भरतपुर के कुछ हिस्से प्राचीन मत्स्य-राज्य में थे। राजा विराट की राजधानी जयपुर रियासत में कदाचित् वैराट नामक स्थान में थी।

(१२) शूरसेनों का राज्य—शूरसेन-राज्य की राजधानी यमुना नदी के किनारे पर प्राचीन "मधुरा" (मथुरा) नगरी थी। मनुस्मृति (अध्या० २, श्लो० १९) में लिखा है—"कुरुक्षेत्र और मत्स्य देश तथा पंचाल और शूरसेन सब मिलकर ब्रह्मर्षि-देश कहलाते हैं।"

(१३) अश्मकों का राज्य—अश्मक-राज्य गोदावरी नदी के किनारे पर था और इसकी राजधानी पोतन या पोतली थी।

(१४) अवन्तियों का राज्य—अवन्ति-राज्य के दो विभाग थे। इसका उत्तरी भाग केवल "अवन्ति" कहलाता था और इसकी राजधानी उज्जयिनी थी; और इसका दक्षिणी भाग अवंति-दक्षिणापथ कहलाता था और उसकी राजधानी माहिस्मती (माहिष्मती) थी।

(१५) गंधारों का राज्य—गंधार-राज्य में पश्चिमी पंजाब और पूर्वी अफगानिस्तान शामिल था। इसकी राजधानी तक्षशिला (तक्षशिला) थी। प्राचीन तक्षशिला नगरी वर्तमान के रावलपिंडी जिले के सराय काला नामक स्टेशन के पास थी।

(१६) कंबोजों का राज्य—प्राचीन कंबोज-राज्य कहाँ था, इसका निश्चय अभी तक नहीं हुआ है। एक मत यह है कि उत्तरी हिमालय के लोग कंबोज थे। दूसरा मत यह है कि तिब्बत के लोग कंबोज थे। पर बुद्ध-जन्म के समय वे कदाचित् सिंध नदी के बिलकुल उत्तर-पश्चिम में बसे हुए थे। प्राचीन ईरानी शिलालेखों में जिन "कंबुजिय" लोगों का उल्लेख आया है, वे कदाचित् यही "कंबोज" थे।

जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं, उस समय अर्थात् ई० पू० छठी शताब्दी में आर्यावर्त इन्हीं छोटे छोटे स्वतंत्र राज्यों में बँटा हुआ था। ये अक्सर आपस में लड़ा भी करते थे। उस समय कोई ऐसा साम्राज्य या बड़ा राज्य न था, जो इन सब को अपने अधिकार में रखता। लोगों में राजनीतिक स्वतंत्रता का भाव प्रबलता के साथ फैला हुआ था। कोई उनकी स्वतंत्रता में बाधा डालनेवाला न था। प्रत्येक गाँव और प्रत्येक नगर अपना प्रबंध अपने आप करता था। सारांश यह है कि उस समय सब ग्राम और सब नगर एक तरह के छोटे मोटे प्रजा-तंत्र राज्य थे। उस समय उत्तरी भारत में कई प्रजातंत्र राज्य भी थे, जिनमें से मुख्य ये थे—(१) शाक्यों का प्रजातंत्र राज्य, (२) भग्गों का प्रजातंत्र राज्य; (३) बुलियों का प्रजातन्त्र राज्य, (४) कालामों का प्रजातन्त्र राज्य; (५) कोलियों का प्रजातंत्र राज्य; (६) मल्लों का प्रजातंत्र राज्य; (७) मौर्यों का प्रजातंत्र राज्य; (८) विदेहों का प्रजातंत्र राज्य; और (९) लिच्छवियों का प्रजातंत्र राज्य। इन प्रजातंत्र राज्यों में सब से अधिक प्रमुख शाक्यों, विदेहों और लिच्छवियों का था। बुद्ध के जीवन पर इन

प्रजातंत्र राज्यों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। गौतम बुद्ध शाक्यों के प्रजातन्त्र-राज्य में पैदा हुए थे। उनके पिता शुद्धोदन इसी प्रजातंत्र राज्य के एक सभापति या प्रधान थे। गौतम बुद्ध ने स्वाधीन विचार, संघटन शक्ति और एकता की शिक्षा यहीं प्राप्त की थी। बुद्ध भगवान् ने अपने भिक्षु-संघ का संघटन भी इन्हीं प्रजातंत्र राज्यों के आदर्श पर किया था। इन प्रजातंत्र राज्यों का सविस्तर वर्णन आगे चलकर किया जायगा।

सामाजिक दशा

बुद्ध के पहले ही आर्यों में जाति-भेद बहुत बढ़ गया था। हमारे यहाँ आजकल जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते हैं, वैसे ही चार वर्ण उस समय भी थे। इन चारों वर्णों में, राइस डेविड्स के अनुसार, क्षत्रिय लोग सब से श्रेष्ठ थे और उन्हीं का मान सब से अधिक था[1]। उनके बाद ब्राह्मणों का दरजा था; और ब्राह्मणों के बाद वैश्यों तथा शूद्रों का। समाज में क्षत्रियों की मर्यादा सब से बड़ी चढ़ी थी। इस मत की पुष्टि में राइस डेविड्स बौद्ध और जैन ग्रंथों का प्रमाण देते हैं। वे ब्राह्मणों के लिखे हुए ग्रंथों को प्रामाणिक नहीं मानते; क्योंकि उनके मत से ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ और प्रशंसा के लिये अपने ही गुण गाये हैं और अपने को चारों वर्णों में सब से श्रेष्ठ बतलाया है। अतएव राइस डेविड्स का मत है कि वर्ण-व्यवस्था के बारे में

---

[1] राइस डेविड्स का "बुद्धिस्ट इंडिया" (Budhist India) पृ० ५२, ५०, [illegible]

जो बुद्ध ब्राह्मणों के ग्रंथों में लिखा है, वह कदापि माना नहीं जा सकता।

मालूम होता है कि छठी या सातवीं शताब्दी में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच बहुत द्वेष उत्पन्न हो गया था। वे एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहते थे। इसी कारण बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में, जो ब्राह्मणों के विरुद्ध और क्षत्रियों के पक्ष में थे, ब्राह्मणों का स्थान क्षत्रियों के नीचे रक्खा गया है और उनका उल्लेख अपमान तथा नीचता-सूचक शब्दों में किया गया है। यह भी मालूम होता है कि इस समय क्षत्रिय लोग विद्या, ज्ञान और तप में ब्राह्मणों का मुकाबला करने लगे थे और उनसे आगे निकल जाना चाहते थे। क्षत्रियों की तुलना में ब्राह्मणों की हीनता दिखाने के लिये जैन कल्प-सूत्र में लिखा है कि अर्हत इत्यादि नीच जाति या ब्राह्मण जाति में कभी जन्म ग्रहण नहीं कर सकते। अर्हत, तीर्थंकर या बुद्ध का अवतार सदा क्षत्रिय वंश में हुआ है और होगा। ऐसी अवस्था में बौद्ध तथा जैन ग्रंथों को बिलकुल सत्य मान लेना उचित नहीं मालूम होता।

इन चारों वर्णों को छोड़कर और बहुत सी ऐसी जातियों का भी पता जातकों में लगता है, जो शूद्रों से भी हीन समझी जाती थीं। इनको "हीन-जातियाँ" कहते थे। ऐसे लोग बढ़ई, नाई, कुम्हार, जुलाहे, चमार इत्यादि थे। जातकों से पता लगता है कि उस समय अछूत जातियाँ भी थीं, और उनके साथ पूरा बर्ताव किया जाता था। "चित्त-संभूत जातक" में लिखा है कि उस ब्राह्मण और वैश्य वंश की दो स्त्रियाँ एक साथ के फाटक से निकल रही थीं, तब उन्हें देखते ही चांडाल दिखाई

पड़े। चांडाल के दर्शन को उन्होंने बड़ा अशकुन समझा और वे घर लौट गईं। घर जाकर उन्होंने उस दर्शन के पाप को मिटाने के लिये अपनी आँखें धो डालीं। इसके बाद लोगों ने उन दोनों चांडालों को खूब पीटा और उनकी खूब दुर्गति की। "मातंग जातक" तथा "सतधम्म जातक" से भी पता लगता है कि अछूत जातियों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता था। बुद्ध के दयापूर्ण हृदय में इन सामाजिक अन्याय के प्रति अवश्य घृणा का भाव उत्पन्न हुआ होगा। इसी अन्याय को दूर करने के लिये उन्होंने ऊँच नीच के भेद को बिलकुल त्याग दिया; और अपने धर्म तथा संघ का द्वार सब वर्णों तथा सब जातियों के लिये समान रूप से खोल दिया।

जातकों से यह भी पता लगता है कि बौद्धकाल के पूर्व एक वर्ण दूसरे वर्ण के साथ विवाह और भोजन कर सकता था। इस तरह के विवाह से जो संतान उत्पन्न होती थी, वह अपने पिता के वर्ण की समझी जाती थी। जातकों से ही यह भी पता लगता है कि दूसरे वर्ण में विवाह करने की अपेक्षा अपने वर्ण में विवाह करना अच्छा समझा जाता था। पर एक ही गोत्र में विवाह करना निषिद्ध माना जाता था *।

जातकों से यह भी प्रकट होता है कि बौद्ध काल के पहले सब वर्णों और जातियों के मनुष्य अपने से इतर वर्ण और इतर जाति का भी काम करने लगे थे। ब्राह्मण लोग व्यापार भी करते थे। वे कपड़ा बुनते हुए, पहिये आदि बनाते हुए और

---

* देखो—"[illegible]," "[illegible]" और "[illegible]"।

खेती-बारी करते हुए लिखे गये हैं। क्षत्रिय लोग भी व्यापार करते थे। एक क्षत्रिय के बारे में लिखा है कि उसने कुम्हार, माली और पाचक के काम किये थे। तो भी इन लोगों की जातियों में कोई अंतर नहीं हुआ था। यही उस समय की सामाजिक दशा थी। अब तत्कालीन धार्मिक दशा का वर्णन किया जाता है।

धार्मिक दशा

यज्ञ और बलिदान—बुद्ध के जन्म के समय धर्म की बड़ी बुरी दशा थी। उस समय पशु-यज्ञ पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। निरपराध, दीन, असहाय पशुओं के रुधिर से यज्ञ-वेदी लाल की जाती थी। यह पशु-वध इसलिये किया जाता था कि जिससे यजमान की मनोकामना पूरी हो। पुरोहित लोग यजमानों से यज्ञ कराने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। यही उनकी जीविका का मुख्य द्वार था। बिना दक्षिणा के यज्ञ अपूर्ण और निष्फल समझा जाता था, अतएव ब्राह्मणों को इन यज्ञों और बलिदानों से बड़ा लाभ होता था। जन्म से लेकर मरण पर्यंत प्रत्येक संस्कार के साथ यज्ञ होना अनिवार्य था। कर्मकांड का पूर्ण रूप से और सार्वभौमिक प्रसार था। समाज आडम्बर में फँसा हुआ था; पर उसकी आत्मा घोर अंधकार में पड़ी हुई प्रकाश के लिये पुकार रही थी। किंतु कोई यह पुकार सुननेवाला न था। समाज पर इस यज्ञ-प्रथा का बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता था। एक तो यज्ञों में जो पशु-वध होता था, उससे मनुष्यों के हृदय कठोर और निर्दय होते जा रहे थे और

इनमें से जीवन के महत्व का भाव घटता जा रहा था—लोग आत्मिक जीवन का गौरव भूलने लगे थे। इस यज्ञ-प्रथा का दूसरा बुरा प्रभाव यह था कि मनुष्यों में जड़ पदार्थ की महिमा बहुत बढ़ गई थी। लोग बाह्य बातों को ही अपने जीवन में सब से श्रेष्ठ स्थान देते थे। यज्ञ करना और कराना ही सब से बड़ा धर्म और सब से बड़ा कार्य गिना जाने लगा था। आत्मा की आत्मिक उन्नति की ओर लोग उपेक्षा से देखते थे। लोगों में यह विश्वास फैला हुआ था कि यज्ञ करने से पुराने किये हुए बुरे कर्मों का दोष नष्ट हो जाता है। ऐसी हालत में समाज में पवित्र आचरण और आत्मिक उन्नति का गौरव भला कब रह सकता था!

इसके अतिरिक्त यज्ञ करने में बहुत धन व्यय होता था। ब्राह्मणों को बड़ी बड़ी दक्षिणाएँ दी जाती थीं। बहुमूल्य वस्त्र, गौएँ, घोड़े और सुवर्ण इत्यादि दक्षिणा के तौर पर दिये जाते थे। कुछ यज्ञ तो ऐसे थे, जिनमें साल साल भर लग जाता था और जिनमें सहस्रों ब्राह्मणों की आवश्यकता होती थी। अतएव यज्ञ करना और उसके द्वारा यश प्राप्त करना हर किसी का काम न था। केवल धनवान् ही यज्ञ करने का साहस कर सकते थे। इसलिये विचार-प्रवाह कर्म-कांड के विरुद्ध बहने लगा और लोग आत्मिक शान्ति प्राप्त करने के लिये नये उपाय सोचने लगे।

हठ योग और तपस्या—आत्मिक शान्ति प्राप्त करने के उपायों में से एक उपाय हठ योग भी था। लोगों का यह विश्वास था कि कठिन तपस्या करने से ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हो सकती है। आत्मिक उन्नति करने अथवा प्रकृति पर विजय पाने के लिये

लोग अनेक प्रकार की तपस्याओं के द्वारा अपनी काया को कष्ट पहुँचाते थे। इन्द्रियों पर विजय पाने के लिये पंचाग्नि तापना, एक टाँग से खड़े होकर और एक हाथ उठाकर तपस्या करना, महीनों तक कठिन से कठिन उपवास करना और इसी तरह की दूसरी तपस्याएँ आवश्यक समझी जाती थीं। सरदी और गरमी का कुछ ख्याल न करके ये लोग अपने उद्देश्य की सिद्धि में दत्तचित्त रहते थे। इन लोगों को कठिन से कठिन शारीरिक दुःख से भी क्लेश न होता था। इनका अभ्यास इतना बढ़ा चढ़ा होता था कि इनमें से कुछ तपस्वी अपने सिर तथा दाढ़ी मूँछ के बालों को हाथ से नोच नोचकर फेंक देते थे। लोगों में यह विश्वास बहुत जोरों के साथ फैला हुआ था कि यदि इस तरह की तपस्या पूर्ण रूप से की जाय, तो मनुष्य सारे विश्व का भी साम्राज्य पा सकता है। बुद्ध भगवान के जन्म समय में पूर्वोक्त तामसी तप की महिमा खूब फैली हुई थी। भगवान् बुद्धदेव ने स्वयं लगभग छः वर्षों तक इसी हठयोग का कठिन व्रत धारण किया था। पर जब उनको इसकी निस्सारता का विश्वास हो गया, तब वे इसे छोड़कर सत्य ज्ञान की खोज में चल पड़े थे।

ज्ञान मार्ग और दार्शनिक विचार—पर आत्मिक उन्नति चाहनेवाले पुरुषों की आत्मा को न तो कर्म-काण्ड से ही शांति मिली और न हठ योग या तपस्या से ही परमानंद की प्राप्ति हुई। ऐसे लोगों को समाज का बनावटी और झूठा जीवन कष्ट देने लगा। सत्य के इन अन्वेषकों ने अपने घर-बार और इस असत्य संसार से मुँह मोड़कर वन की ओर प्रस्थान किया। बुद्ध भगवान के अवतार लेने के पहले, और उनके समय में भी,

बहुत से भिक्षु, साधु, संन्यासी, वैखानस, परिव्राजक आदि एक जगह से दूसरी जगह विचरा करते थे। लोगों में इनका बहुत अधिक मान था। उस समय के लोग आतिथ्य-सेवा करना बहुत अच्छी तरह जानते थे। अतएव इन परिव्राजकों के ठहरने के लिये राजे-महाराजे तथा धनी पुरुष बस्ती के बाहर अच्छे अच्छे आश्रम बनवा देते थे। बहुत से स्थानों में उन आश्रमों का प्रबंध पंचायती चंदे से भी होता था। विचरते हुए परिव्राजक इन आश्रमों में आ ठहरते थे। लोग उनके भोजन आदि का प्रबंध पूर्ण रूप से कर देते थे। नित्य प्रति लोग इन परिव्राजकों के दर्शन करने के लिये वहाँ जाते थे और दार्शनिक तथा धार्मिक विषयों पर इनके विचार सुनते थे। यदि वहाँ उसी समय और भी कोई परिव्राजक ठहरे होते थे, तो प्रायः शास्त्रार्थ भी छिड़ जाता था। वे पूर्ण स्वतंत्रता के साथ अपने विचार प्रकट करते थे। स्त्री और पुरुष दोनों परिव्राजिका और परिव्राजक हो सकते थे। प्रचलित संस्थाओं के प्रति इन लोगों में कोई विशेष प्रेम न था। उनमें से बहुतों ने तो प्रचलित धर्म से असंतुष्ट होकर ही घर-बार छोड़कर सन्यासाश्रम ग्रहण किया था, इसलिये वे प्रचलित धर्म का प्रतिपादन और समर्थन न करते थे। प्रचलित धर्म और प्रचलित प्रणाली की त्रुटियों से असंतुष्ट होने के कारण ही ये लोग चारों तरफ इन संस्थाओं की बुराइयाँ प्रकट करते थे और तत्कालीन समाज की खुले तौर पर समालोचना करते थे। वे सर्व साधारण में प्रचलित धर्म की ओर अश्रद्धा तथा असंतोष उत्पन्न कर रहे थे और उनके विश्वासों की जड़ धीरे धीरे कमजोर करते जाते थे। इस प्रकार प्रचलित धर्म की जड़

लोग अनेक प्रकार की तपस्याओं के द्वारा अपनी काया को कष्ट पहुँचाते थे। इन्द्रियों पर विजय पाने के लिये पंचाग्नि तापना, एक टाँग से खड़े होकर और एक हाथ उठाकर तपस्या करना, महीनों तक कठिन से कठिन उपवास करना और इसी तरह की दूसरी तपस्याएँ आवश्यक समझी जाती थीं। सरदी और गरमी का कुछ खयाल न करके ये लोग अपने उद्देश्य की सिद्धि में दत्त-चित्त रहते थे। इन लोगों को कठिन से कठिन शारीरिक दुःख से भी हेरा न होता था। इनका अभ्यास इतना बढ़ा चढ़ा होता था कि इनमें से कुछ तपस्वी अपने सिर तथा दाढ़ी मूँछ के बालों को हाथ से नोच नोचकर फेंक देते थे। लोगों में यह विश्वास बहुत ज़ोरों के साथ फैला हुआ था कि यदि इस तरह की तपस्या पूर्ण रूप से की जाय, तो मनुष्य सारे विश्व का भी साम्राज्य पा सकता है। बुद्ध भगवान् के जन्म समय में पूर्वोक्त तामसी तप की महिमा खूब फैली हुई थी। भगवान् बुद्धदेव ने स्वयं लगभग छः वर्षों तक इसी हठयोग का कठिन व्रत धारण किया था। पर जब उनको इसकी निस्सारता का विश्वास हो गया, तब वे इसे छोड़कर सत्य ज्ञान की खोज में चल पड़े थे।

ज्ञान मार्ग और दार्शनिक विचार—पर आत्मिक उन्नति चाहनेवाले पुरुषों की आत्मा को न तो कर्म-काण्ड से ही शांति मिली और न हठ योग या तपस्या से ही परमानंद की प्राप्ति हुई। ऐसे लोगों को समाज का बनावटी और झूठा जीवन कष्ट देने लगा। सत्य के इन अन्वेषकों ने अपने घर-बार और इस असत्य संसार से मुँह मोड़कर वन की ओर प्रस्थान किया। बुद्ध भगवान् के अवतार लेने के पहले, और उनके समय में भी,

बहुत से भिक्षु, साधु, संन्यासी, बैरागिन, परिव्राजक आदि एक जगह से दूसरी जगह विचरा करते थे। लोगों में इनका बहुत अधिक मान था। उस समय के लोग आतिथ्य-सेवा करना बहुत अच्छी तरह जानते थे। अतएव इन परिव्राजकों के ठहरने के लिये राजे-महाराजे तथा धनी पुरुष बस्ती के बाहर अच्छे अच्छे आश्रम बनवा देते थे। बहुत से स्थानों में उन आश्रमों का प्रबंध पंचायती रूप से भी होता था। विचरते हुए परिव्राजक इन आश्रमों में आ ठहरते थे। लोग उनके भोजन आदि का प्रबंध पूर्ण रूप से कर देते थे। नित्य प्रति लोग इन परिव्राजकों के दर्शन करने के लिये वहाँ जाते थे और दार्शनिक तथा धार्मिक विषयों पर इनके विचार सुनते थे। यदि वहाँ उसी समय और भी कोई परिव्राजक ठहरे होते थे, तो प्रायः शास्त्रार्थ भी छिड़ जाता था। वे पूर्ण स्वतंत्रता के साथ अपने विचार प्रकट करते थे। स्त्री और पुरुष दोनों परिव्राजिका और परिव्राजक हो सकते थे। प्रचलित संस्थाओं के प्रति इन लोगों में कोई विशेष प्रेम न था। उनमें से बहुतों ने तो प्रचलित धर्म से असंतुष्ट होकर ही घर-बार छोड़कर संन्यासाश्रम ग्रहण किया था; इसलिये वे प्रचलित धर्म का प्रतिपादन और समर्थन न करते थे। प्रचलित धर्म और प्रचलित प्रणाली की त्रुटियों से असंतुष्ट होने के कारण ही ये लोग चारों तरफ इन संस्थाओं की बुराइयाँ प्रकट करते थे और तत्कालीन समाज की खुले तौर पर समालोचना करते थे। वे सर्व साधारण में प्रचलित धर्म की ओर अश्रद्धा तथा असंतोष उत्पन्न कर रहे थे और उनके विश्वासों की जड़ धीरे धीरे कमजोर करते जाते थे। इस प्रकार प्रचलित धर्म की जड़

हिलने लगी। इन परिव्राजकों ने धीरे धीरे नये विचारों का बीज बोने के लिये क्षेत्र तैयार कर दिया था। पर अभी बीज बोने-वाले की कमी थी; और लोग उसी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

बुद्ध-जन्म के पहले प्राचीन उपनिषद् भी लिखे जा चुके थे। उपनिषदों के बनानेवालों ने यह विचारने का प्रयत्न किया था कि सब जीवित तथा निर्जीव वस्तुएँ एक ही सर्वव्यापी ईश्वर से उत्पन्न हुई हैं और ये सब एक ही सर्वव्यापी आत्मा के अंश हैं। इन उपनिषदों में कर्म की अपेक्षा ज्ञान की प्रधानता दिखाई गई थी। उनमें ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश और मोह से निवृत्ति बत-लाई गई थी। उनमें पुनर्जन्म का भी अनुमान किया गया था। अज्ञान, जीव के सुख-दुःख के कारण, परमात्मा की सत्ता और आत्मा-परमात्मा का संबंध आदि सब विषयों पर बहुत ही बुद्धिमत्ता के साथ गूढ़ विचार किया गया था। धीरे धीरे उप-निषदों का अनुशीलन करनेवालों की संख्या बढ़ने लगी। उनमें प्रतिपादित विचारों का अध्ययन और मनन होने लगा। किसी ने उपनिषदों में अद्वैतवाद पाया, तो किसी ने उनमें से विशिष्टा-द्वैत निकाला। इसी तरह अनेक प्रकार के मत-मतांतर हो गये और भिन्न भिन्न शाखों का प्रादुर्भाव हुआ। वर्तमान षड्दर्शन इस समय के आचार्यों की व्याख्याएँ हैं। जिन बहुत सी व्याख्याओं में परस्पर अधिक विरोध न था, उनमें से बहुतों का नाश हो गया। कहा जाता है कि पहले कम से कम ७८ प्रकार के दार्शनिक संप्रदाय थे; पर मुख्य यही छः थे। भिन्न भिन्न आचार्य सृष्टि के रहस्य का पृथक् पृथक् रूप से उद्घाटन करते थे। पर इन सब में प्रबल दो तरह के सिद्धान्त थे। एक सिद्धान्त सांख्य का था, जो आत्मा और

प्रकृति में भेद मानना था। दूसरा सिद्धान्त सांख्य के विरुद्ध था। यही दूसरा सिद्धान्त विकसित रूप में वेदान्त के नाम से प्रचलित हुआ था। अस्तु; बुद्धदेव के समय तक दार्शनिक विचार परिपक्व हो चुके थे। पर बहुतेरे वेदान्ती, भिक्षु, संन्यासी और परिव्राजक आत्मा, परमात्मा, माया और प्रकृति संबंधी सूक्ष्म विवेचना-वाद में ही फँसे हुए थे।

इस तरह से बुद्ध के जन्म-समय में (१) यज्ञ और बलिदान, (२) हठ योग और तपस्या तथा (३) ज्ञान-मार्ग और दार्शनिक विचार, ये तीन मुख्य धाराएँ यहाँ प्रबलता से बह रही थीं। पर सतह के नीचे और भी बहुत सी छोटी छोटी धाराएँ थीं। जैसे, टोने-टोटके का लोगों में बहुत रिवाज था। सर्प, वृक्ष आदि की पूजा तथा भूत-चुड़ैल आदि का माहात्म्य भी काफी तौर पर फैला हुआ था। पर उस समय असली प्रश्न, जो मनुष्य के सामने अनादि काल से चला आ रहा है, यह था कि जो सुख दुःख इस संसार में है, उसका कारण क्या है। याज्ञिकों ने इसका उत्तर यह दिया था कि संसार में दुःख का कारण देवताओं का कोप है। इन लोगों ने देवताओं को प्रसन्न करने का साधन पशु-यज्ञ स्थिर किया था; क्योंकि लोक में देखा जाता है कि जो मनुष्य रुष्ट हो जाता है, वह प्रार्थना करने और भेंट देने से प्रसन्न हो जाता है। हठ योग और तपश्चरण करनेवालों ने इस प्रश्न का यह उत्तर दिया कि तपस्या से मनुष्य अपनी इंद्रियों को अपने वश में कर सकता है; और इंद्रियों को वश में करने से वह चित्त की शांति अथवा दुःख से छुटकारा पा सकता है। ज्ञान-मार्ग का अनुसरण करनेवालों ने इस प्रश्न का उत्तर

यह दिया कि ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश करके मनुष्य दुःख से मुक्ति पा सकता है। पर ये तीनों उत्तर मनुष्यों के हृदयों के संतोष और शांति देने में असमर्थ थे। उस समय समाज में सब से बड़ी आवश्यकता सहानुभूति, प्रेम और दया की थी। समाज में नीरसता, निर्दयता और शुष्क ज्ञान मार्ग का प्रचार हो रहा था। उस समय समाज को एक ऐसे वैद्य की आवश्यकता थी, जो उसके इस रोग की ठीक तरह से दवा करता। भगवान् बुद्धदेव ने अवतार लेकर समय की आवश्यकता को ठीक तरह से समझा, और सब अच्छी तरह सोच समझकर उन्होंने दुनिया को जो उपदेश दिया, और जो नई बात लोगों को बतलाई, वह यह थी कि जो लोग संसार में धर्म-मार्ग पर चलना चाहते हों और परोपकार तथा आत्मोन्नति में लगना चाहते हों, उन्हें चाहिए कि वे दयालु, सदाचारी और पवित्र-हृदय बनें। बुद्ध के पहले लोगों का विश्वास था यज्ञों में, मंत्रों में, तपस्याओं में और शुष्क ज्ञान-मार्ग में। पर बुद्ध ने यज्ञ, मंत्र, कर्म काण्ड और धर्माभास की जगह लोगों को अपना अंतःकरण शुद्ध करने की शिक्षा दी। उन्होंने लोगों को दीनों और दरिद्रों की भलाई करने, बुराई से बचने, सब से भाई की तरह स्नेह रखने और सदाचार तथा सच्चे ज्ञान के द्वारा दुःखों से छुटकारा पाने का उपदेश दिया। उनकी दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र, ऊँच और नीच, अमीर और गरीब सब बराबर थे। उनके मत में सब लोग पवित्र जीवन के द्वारा निर्वाण-पद प्राप्त कर सकते थे। वे सब को अपने इस धर्म का उपदेश देते थे। बुद्ध भगवान् की पवित्र शिक्षाओं का यह प्रभाव हुआ कि शुद्ध ही शताब्दियों में बौद्ध धर्म

केवल एक ही जाति या देश का नहीं, बल्कि समस्त एशिया का मुख्य धर्म हो गया। इन महात्मा का जीवन चरित्र और इनके उपदेश तथा सिद्धांत आगे के अध्यायों में विस्तारपूर्वक लिखे जायेंगे। पर इसके पहले हम जैन धर्म और उसके संस्थापक महावीर स्वामी का भी कुछ परिचय दे देना चाहते हैं, क्योंकि जिस समय बुद्ध भगवान् हुए थे, उसी समय महावीर स्वामी भी अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे। इनके अतिरिक्त दोनों के सिद्धांतों में भी बहुत कुछ समानता थी।

तीसरा अध्याय

जैन धर्म का प्राचीन इतिहास

जैन धर्म की स्थापना—ईसा के पूर्व छठी शताब्दी के उत्तर भाग में भारतवर्ष में कई नये नये धर्मों और संप्रदायों का जन्म हुआ था। बौद्ध ग्रंथों से पता लगता है कि बुद्ध के समय में प्रायः तिरसठ संप्रदाय ऐसे प्रचलित थे, जिनके सिद्धांत ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध थे। जैन साहित्य से तो इससे भी अधिक संप्रदायों का पता लगता है। इनमें से कुछ संप्रदाय कदाचित् बुद्ध के भी पहले से चले आ रहे थे। इन संप्रदायों में से वर्धमान महावीर का स्थापित किया हुआ जैन संप्रदाय भी एक है। बुद्ध की तरह महावीर ने भी वेदों, यज्ञों और ब्राह्मणों की पवित्रता और श्रेष्ठता का खंडन करके अपने धर्म का प्रचार किया था। पर यह एक विचित्र बात है कि बुद्ध की तरह महावीर ने भी भिक्षुओं के नियम तथा उनके जीवन का क्रम ब्राह्मणों के धर्म से ही ग्रहण किया। स्मृतियों और धर्म-शास्त्रों में हिंदुओं का जीवन ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक इन चार आश्रमों में विभक्त है। कौटिलीय अर्थ शास्त्र* में परिव्राजक के कर्तव्यों का वर्णन इस प्रकार किया है—"इंद्रियों का दमन करना, सांसारिक व्यवहारों को त्यागना, अपने पास धन न रखना, लोगों का संग न करना, भिक्षा

* कौटिलीय अर्थ शास्त्र, पृ० ८.

माँगकर खाना, वन में रहना, एक ही स्थान पर लगातार न रहना, बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धता रखना, प्राणियों की हिंसा न करना, सत्य का पालन करना, किसी से ईर्ष्या न करना, सब पर दया करना और सब को क्षमा करना, ये सब कर्तव्य परिव्राज के हैं।" जैन ग्रंथों में भी दूसरे शब्दों में भिक्षुओं के यही कर्तव्य दिये गये हैं। इससे प्रकट है कि भिक्षुओं के नियम तथा उनके जीवन का क्रम महावीर स्वामी ने भी ब्राह्मण धर्म से ही ग्रहण किया था।

जैन धर्म की प्राचीनता—बहुत समय तक लोगों का यह विश्वास था कि जैन धर्म भी बौद्ध धर्म की ही एक शाखा है। लेसन, वेबर और विल्सन आदि यूरोपीय विद्वानों का मत था कि जैन लोग बौद्ध ही थे, जिन्होंने बौद्ध धर्म छोड़कर उस धर्म की एक अलग शाखा बना ली थी। बौद्ध और जैन ग्रंथों तथा सिद्धांतों में बहुत कुछ समानता है, इसी से कदाचित् इन विद्वानों ने यह निश्चय किया था कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की ही एक शाखा है। पर डाक्टर ब्यूलर और डाक्टर जैकोबी इन दो जर्मन विद्वानों ने जैन ग्रंथों की खूब अच्छी तरह खोज करने और बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मण धर्म के ग्रंथों से उनकी तुलना करने के बाद पूरी तरह से इस मत का खंडन कर दिया है। अब यह सिद्ध हो गया है कि जैन और बौद्ध दोनों धर्म साथ ही साथ उत्पन्न हुए थे और कई शताब्दियों तक साथ ही साथ प्रचलित रहे। पर अन्त में बौद्ध धर्म का तो भारतवर्ष में लोप हो गया, और जैन धर्म अब तक यहाँ के कुछ भागों में प्रचलित है। कुछ विद्वानों का तो यह भी मत है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से भी पुराना है।

जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर—साधारणतः महावीर ही जैन धर्म के वास्तविक संस्थापक माने जाते हैं। पर जैन लोग अपने धर्म को अत्यन्त प्राचीन बतलाते हैं। उनका कहना है कि महावीर के पहले तेईस तीर्थंकर हो चुके थे, जिन्होंने समय समय पर अवतार लेकर संसार के निर्वाण के लिये सत्य धर्म का प्रचार किया था। इनमें से प्रथम तीर्थंकर का नाम ऋषभदेव था। ऋषभदेव कब हुए, यह नहीं कहा जा सकता। जैन ग्रंथों में लिखा है कि वे करोड़ों वर्ष तक जीवित रहे। अतएव प्राचीन तीर्थंकरों के बारे में जैन ग्रंथों में लिखी हुई बातों पर विश्वास करना असंभव है। जैन ग्रंथों के अनुसार बाद के तीर्थंकरों का जीवन-काल घटता गया; यहाँ तक कि तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जीवन-काल केवल सौ वर्ष माना गया है। कहा जाता है कि पार्श्वनाथ महावीर स्वामी से केवल ढाई सौ वर्ष पहले निर्वाण-पद को प्राप्त हुए थे। महावीर चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर माने जाते हैं।

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ—डाक्टर जैकोबी तथा अन्य विद्वानों का मत है कि पार्श्वनाथ ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इन विद्वानों के मत से पार्श्व ही जैन धर्म के वास्तविक संस्थापक हैं। कहा जाता है कि वे महावीर के निर्वाण के ढाई सौ वर्ष पूर्व हुए थे; अतएव उनका समय ई० पू० आठवीं शताब्दी निश्चित होता है। हम लोगों को पार्श्व के जीवन की घटनाओं और उपदेशों के बारे में बहुत कम ज्ञान है। भद्रबाहु कृत जैन-कल्पसूत्र के एक अध्याय में सब तीर्थंकरों या जिनों की जीवनी दी [illegible] है। उसी में पार्श्व की भी संक्षिप्त जीवनी है। पर ऐतिहासिक दृष्टि

से इस ग्रंथ की लिखी हुई बातें सर्वथा माननीय नहीं हैं, क्योंकि जितने तीर्थंकर हुए हैं, उन सब की जीवनी इसमें प्रायः एक ही शैली या ढंग पर लिखी गई है। इस ग्रन्थ से पता लगता है कि अन्य तीर्थंकरों की तरह पार्श्व भी क्षत्रिय कुल के थे। वे काशी के राजा अश्वसेन के पुत्र थे। उनकी माता का नाम वामा था। तीस वर्षों तक गृहस्थी का सब सुख भोगकर और अंत में अपना राज-पाट छोड़कर वे परिव्राजक हो गये थे। चौरासी दिनों तक ध्यान करने के बाद वे पूर्ण ज्ञान को प्राप्त हुए। तभी से वे लगभग सत्तर वर्षों तक परमोच्च अर्हत पद पर रहते हुए सम्मेत पर्वत के शिखर पर निर्वाण को प्राप्त हुए। पार्श्वनाथ के धार्मिक सिद्धान्त प्रायः वही थे, जो बाद को महावीर स्वामी के हुए। कहा जाता है कि पार्श्व अपने अनुयायियों को निम्न-लिखित चार नियम पालन करने की शिक्षा देते थे—(१) प्राणियों की हिंसा न करना, (२) सत्य बोलना; (३) चोरी न करना; और (४) धन पास न रखना। महावीर ने एक पाँचवाँ नियम ब्रह्मचर्य-पालन के संबंध में भी बनाया था। इसके सिवा पार्श्व ने अपने अनुयायियों को एक अधोवस्त्र और एक उत्तरीय पहनने की अनुमति दी थी, पर महावीर अपने शिष्यों को बिलकुल नग्न रहने की शिक्षा देते थे। कदाचित् आजकल के "श्वेतांबर" और "दिगंबर" जैन संप्रदाय प्रारंभ में क्रम से पार्श्व और महावीर के ही अनुयायी थे।

महावीर स्वामी की जीवनी—महावीर के जीवन की घटनाओं का संक्षिप्त विवरण लिखना सहज नहीं है; क्योंकि जैन कल्प-सूत्र में, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, महावीर स्वामी

की जीवनी अतिशयोक्तियों और कल्पनाओं से भरी हुई है। यदि यह ग्रंथ वास्तव में भद्रबाहु का रचा हुआ हो, और यदि भद्रबाहु ई० पू० तीसरी शताब्दी के पहले के हों, तो महावीर के संबंध में इस ग्रंथ की कुछ न कुछ बातें ऐतिहासिक दृष्टि से अवश्य महत्व की हैं। इसके सिवा जैन धर्म के कई अन्य ग्रंथों में भी कुछ वाक्य ऐसे हैं, जिनसे महावीर के जीवन की भिन्न भिन्न घटनाओं के संबंध में अनेक बातों का पता लगता है। बौद्ध ग्रंथों से भी महावीर के बारे में बहुत सी बातों का पता लगा है। इन सब ग्रंथों के आधार पर महावीर स्वामी की संक्षिप्त जीवनी यहाँ दी जाती है।

प्राचीन विदेह राजाओं की राजधानी वैशाली* समृद्ध नगरी थी। इस नगरी में एक प्रकार का प्रजातंत्र राज्य था। इस प्रजातंत्र राज्य के चलानेवाले लिच्छवि लोग थे, जो "राजा" कहलाते थे। वैशाली के बाहर पास ही कुंड ग्राम (वर्तमान बसुकुंड नाम का गाँव) था। वहाँ सिद्धार्थ नाम का एक धनाढ्य और कुलीन क्षत्रिय रहता था। वह "ज्ञातृक" नाम के क्षत्रियों का मुखिया था। उसकी रानी वैशाली के राजा चेटक की बहन थी और उसका नाम राजकुमारी त्रिशला था। चेटक की पुत्री का विवाह मगध के राजा बिंबिसार से हुआ था। इस तरह से सिद्धार्थ का मगध के राज-घराने से भी घनिष्ठ संबंध था। सिद्धार्थ के एक पुत्री और दो पुत्र हुए, जिनमें से छोटे का नाम वर्धमान

---

* प्राचीन वैशाली आजकल के मुजफ्फरपुर जिले में बसाढ़ और बरौरा नाम के कुछ है।

था। आगे चलकर यही महावीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जैन-कल्प-सूत्र से पता लगता है कि महावीर जब पुष्पोत्तर नामक स्वर्ग से जन्म लेने के लिये उतरे, तब वे ऋषभदत्त नाम के ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा के गर्भ में आये। ये दोनों (ब्राह्मण और ब्राह्मणी) भी कुंडग्राम में ही रहते थे। पर इसके पहले यह कभी नहीं हुआ था कि किसी महापुरुष ने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया हो। अतएव शक्र (इन्द्र) ने उस महापुरुष को देवानंदा के गर्भ से हटाकर त्रिशला के गर्भ में रख दिया। यहाँ यह कह देना उचित जान पड़ता है कि इस कथा को केवल श्वेतांबरी जैन मानते हैं; दिगंबरी लोग इसे नहीं मानते। दिगंबरी और श्वेतांबरी संप्रदायों में मत-भेद की जो बहुत सी बातें हैं, उनमें से एक यह भी है।

वर्धमान के जन्म लेने पर राजा सिद्धार्थ के यहाँ बड़ा उत्सव मनाया गया। बड़े होने पर उन्हें सब शास्त्रों और कलाओं की पूरी शिक्षा दी गई। समय आने पर यशोदा नाम की एक राजकुमारी से उनका विवाह हुआ। इस विवाह से वर्धमान को एक कन्या उत्पन्न हुई, जो बाद को जमालि से ब्याही गई। जब वर्धमान ने "जिन" या "अर्हत" की पदवी प्राप्त करके अपना धर्म चलाया, तब जमालि अपने श्वसुर का शिष्य हुआ। इसी के कारण बाद को जैन धर्म में पहली बार मत-भेद खड़ा हुआ। वर्धमान ने अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद अपने ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन की आज्ञा लेकर, तीसवें वर्ष, घर-बार छोड़कर, भिक्षुओं का जीवन ग्रहण किया। भिक्षु-संप्रदाय ग्रहण करने के बाद वर्धमान ने बहुत कठोर तपस्या करना प्रारंभ किया। यहाँ तक

कि उन्होंने लगातार तेरह महीने तक अपना वस्त्र भी नहीं बदला और सब प्रकार के कीड़े मकोड़े उनके बदन पर रेंगने लगे। इसके बाद उन्होंने सब वस्त्र फेंक दिये और वे बिलकुल नग्न फिरने लगे। निरंतर ध्यान करने, पवित्रतापूर्वक जीवन बिताने और खाने पीने के कठिन से कठिन नियमों का पालन करके उन्होंने अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। वे बिना किसी छाया के वनों में रहते थे और एक स्थान से दूसरे स्थान को विचरा करते थे। कई बार उन पर बड़े बड़े अत्याचार किये गये, पर उन्होंने धैर्य और शांति को कभी हाथ से ■ जाने दिया; और न अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले से कभी द्वेष ही किया।

एक बार जब वे राजगृह के पास नालन्द में थे, तब गोसाल मंखलिपुत्र नाम के एक भिक्षु से उनका साक्षात्कार हुआ। इसके बाद कुछ वर्षों तक उसके साथ महावीर का बहुत घनिष्ट संबंध रहा। छः वर्षों तक दोनों एक साथ रहते हुए बहुत कठोर तपस्या करते रहे। पर इसके बाद किसी साधारण बात पर झगड़ा हो जाने के कारण महावीर से गोसाल अलग हो गया। अलग होकर उसने अपना एक भिन्न संप्रदाय स्थापित किया और यह कहना प्रारंभ किया कि मैंने तीर्थंकर या अर्हत का पद प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार जब महावीर तीर्थंकर हुए, उसके दो वर्ष पहले ही गोसाल ने तीर्थंकर होने का दावा कर दिया था। गोसाल का स्थापित किया हुआ संप्रदाय "आजीविक" के नाम से प्रसिद्ध है। गोसाल के सिद्धांतों और विचारों के बारे में केवल जैन और बौद्ध ग्रंथों से ही पता लगता है। गोसाल या उसके अनुयायी (आजीविक लोग) अपने सिद्धांतों और विचारों

के संबंध में कोई ग्रंथ नहीं लिखे गये हैं। जैन ग्रंथों में गोसाल के संबंध में बहुत ही कटु शब्दों का व्यवहार किया गया है। उनमें गोसाल के संबंध में धूर्त, वंचक, दांभिक आदि शब्द कहे गये हैं। इससे पता चलता है कि जैनों और आजीविकों में बहुत गहरा मत-भेद था और इसी मत-भेद के कारण महावीर के प्रभाव को आरंभ में बड़ा धक्का पहुँचा। गोसाल का प्रधान स्थान श्रावस्ती में एक कुम्हार की दूकान में था। यह दूकान हालाहला नाम की एक स्त्री के अधिकार में थी। मालूम होता है कि गोसाल ने श्रावस्ती में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी।

बारह वर्षों तक कठोर तप करने के बाद तेरहवें वर्ष महावीर ने वह सर्वोच्च ज्ञान या कैवल्य पद प्राप्त किया, जो दुःख और सुख के बंधन से पूर्ण मोक्ष प्रदान करता है। उसी समय से महावीर स्वामी "जिन" या "अर्हत" कहलाने लगे। उस समय उनकी आयु ४२ वर्ष की थी। तभी से उन्होंने अपने धर्म का प्रचार आरंभ किया और "निर्ग्रंथ" नाम का एक संप्रदाय स्थापित किया। आजकल "निर्ग्रंथ" (बंधन-रहित) के स्थान पर "जैन" (जिन के शिष्य) शब्द का व्यवहार होता है। महावीर स्वामी स्वयं "निर्ग्रंथ" मिनु और "ज्ञात" वंश के थे; इससे उनके विरोधी बौद्ध लोग उन्हें "निर्ग्रंथ ज्ञातृपुत्र" कहा करते थे। महावीर स्वामी ने तीस वर्षों तक अपने धर्म का प्रचार करते हुए और दूसरे धर्मवालों को अपने धर्म में लाते हुए चारों ओर भ्रमण किया। वे विशेष करके मगध और अंग के राज्यों में, अर्थात् उत्तरी और दक्षिणी बिहार में, घूमते हुए वहाँ के सभी बड़े बड़े नगरों में गये। वे अधिकतर चंपा, मिथिला, श्रावस्ती, वैशाली या राजगृह में रहते थे। वे

बहुधा मगध के राजा बिंबिसार और अजातशत्रु (कूणिक) से मिलते थे। जैन ग्रंथों से पता चलता है कि उन्होंने मगध के उच्च से उच्च समाजों में से बहुत से लोगों को अपने धर्म का अनुयायी बनाया था। जैन ग्रंथों के अनुसार बिंबिसार और अजातशत्रु महावीर स्वामी के अनुयायी थे। पर बौद्ध ग्रंथों में ये दोनों राजा बुद्ध भगवान् के शिष्य कहे गये हैं। मालूम होता है कि दोनों राजा महावीर और बुद्ध दोनों का समान आदर करते थे।

महावीर स्वामी का निर्वाण—महावीर स्वामी ने बहत्तर वर्ष की उम्र में यह नश्वर शरीर छोड़कर निर्वाण पद प्राप्त किया। आजकल वैशालीमान पटने जिले के पावा नामक प्राचीन नगर में राजा हस्तिपाल के एक लेखक के घर में हुआ था। इस स्थान पर अब भी बहुतों जैन यात्री दर्शन के लिये जाते हैं। जैन ग्रंथों के अनुसार महावीर का निर्वाण विक्रमी संवत् के ४७० वर्ष पहले अर्थात् ई० पू० ५२७ में हुआ था। पर महावीर का निर्वाण-काल ई० पू० ५२७ वर्ष मानने में एक बड़ी अड़चन यह पड़ती है कि महावीर और बुद्ध समकालीन नहीं ठहरते। अतएव बौद्ध ग्रंथों का यह लिखना मिथ्या हो जाता है कि बुद्ध और महावीर दोनों समकालीन थे। इस बात से प्रायः सभी सहमत हैं कि बुद्ध भगवान् का निर्वाण ई० पू० ४८७ और ४८७ के बीच किसी समय हुआ। महावीर का निर्वाण-काल ई० पू० ५२७ वर्ष मानने से महावीर और बुद्ध दोनों के निर्वाण-काल में ५० वर्षों का अन्तर पड़ जाता है। पर बौद्ध और जैन दोनों ही ग्रंथों में कहा गया है कि महावीर और बुद्ध दोनों अजातशत्रु (कूणिक) के समकालीन थे। यदि महावीर का निर्वाण-काल ई०

पू० ५२७ माना जाय, तो फिर महावीर अजातशत्रु के समकालीन नहीं हो सकते। अतएव महावीर का निर्वाण-काल ई० पू० ५२७ नहीं माना जा सकता। डा० जैकोबी महाशय ने प्रसिद्ध जैन ग्रंथकार हेमचंद्र के आधार पर यह निश्चय किया है कि महावीर का निर्वाण ई० पू० ४६७ के लगभग हुआ*। संभवतः जैकोबी महाशय का यह मत ठीक है; अतएव इस ग्रंथ में हम यही मत स्वीकृत करते हैं।

जैन धर्म के सिद्धांत—बौद्ध धर्म की तरह जैन धर्म भी भिक्षुओं का एक संप्रदाय है। बौद्धों की तरह जैन भी जीव-हिंसा नहीं करते। कुछ बातों में तो वे बौद्धों से भी बढ़ गये हैं; और उनका मत है कि केवल पशुओं और वृक्षों में ही नहीं, बल्कि अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी के परमाणुओं में भी जीव है। बौद्धों की तरह जैन लोग भी वेद को प्रमाण नहीं मानते। ये कर्म और निर्वाण के सिद्धांत को स्वीकृत करते हैं और आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं। वे लोग चौबीस तीर्थंकरों को मानते हैं।

जैनियों के पवित्र ग्रंथों अर्थात् आगमों के सात भाग हैं, जिनमें से अंग सब से प्रधान भाग है। अंग ग्यारह हैं, जिनमें से "आचारांग-सूत्र" में जैन भिक्षुओं के आचरण-संबंधी नियम और "उपासक दशा-सूत्र" में जैन उपासकों के आचरण संबंधी नियम दिये गये हैं।

---

* Cambridge History of India, Vol. I Ancient India, p. 156

श्वेतांबर और दिगंबर संप्रदाय—जैन ग्रंथों से पता लगता है कि महावीर के निर्वाण के दो शताब्दी बाद मगध में बड़ा अकाल पड़ा था। उस समय मगध में चंद्रगुप्त मौर्य का राज्य था। अकाल के कारण जैन कल्पसूत्र के रचयिता भद्रबाहु, जो उस समय जैन समाज के प्रसिद्ध अगुआ थे, अपने शिष्यों और साथियों को लेकर मगध से कर्नाटक चले गये। बहुत से जैन मगध ही में रह गये थे और उनके नेता स्थूलभद्र थे। जो जैन चले गये थे, वे अकाल दूर होने पर फिर मगध को लौट आये। पर इस बीच में जो लोग कर्नाटक चले गये थे, उनकी और जो लोग मगध में रह गये थे, उनकी चाल ढाल में बहुत अन्तर न पड़ गया था। मगध के जैने श्वेत वस्त्र पहनने लगे थे; पर कर्नाटकवाले जैन अब तक नग्न रहने की प्राचीन रीति पकड़े हुए थे। इस प्रकार वे दोनों क्रम से श्वेतांबर और दिगंबर कहलाने लगे। कहा जाता है कि ये दोनों संप्रदाय अंतिम बार सन् ७९ या ८२ ईसवी में अलग हुए। जिस समय दिगंबर लोग कर्नाटक में थे, उस समय श्वेतांबरों ने अपने धर्म-ग्रंथों का संग्रह करके उनका निर्णय किया। पर श्वेतांबरों ने जो धर्म-ग्रंथ एकत्र किये थे, उन्हें दिगंबरों ने स्वीकृत नहीं किया। कुछ समय में श्वेतांबरों के धर्म-ग्रंथ तितर बितर हो गये और उनके लुप्त हो जाने का डर हुआ। अतएव वे सन् ४५४ या ४६७ ईसवी में वलभी (गुजरात) की सभा में लिपि-बद्ध किये गये। इस सभा में जैन धर्म-ग्रंथों का उस रूप में संग्रह किया गया, जिस रूप में हम आज उन्हें पाते हैं। इन घटनाओं और कथानकों के अतिरिक्त मथुरा में बहुत से जैन शिलालेख भी मिले हैं, जिनमें से अधिकतर

कुषाण राजा कनिष्क के समय के लगभग उसके बाद के हैं। इन शिलालेखों से पता लगता है कि श्वेतांबर संप्रदाय ईसा की प्रथम शताब्दी में विद्यमान था।

ईसवी सन् के बाद जैन धर्म की स्थिति—ईसवी सन् के बाद का जैन धर्म का प्रामाणिक इतिहास अंधकार में पड़ा हुआ है। उस समय के इतिहास पर यदि कोई प्रकाश पड़ता है, तो वह केवल मथुरा के शिलालेखों से। उनसे जैन धर्म की भिन्न भिन्न शाखाओं और संप्रदायों का कुछ कुछ पता लगता है, और उनमें जैन धर्म की जो अवस्था सूचित होती है, वही आज भी विद्यमान है। हाँ, इन सौ शताब्दियों में उन संप्रदायों के नाम और बाहरी रूप कदाचित् बहुत कुछ बदल गये हैं। इन शिलालेखों में उन गृहस्थ उपासकों और उपासिकाओं के नाम भी मिलते हैं, जिन्होंने भिन्न भिन्न समयों में भिक्षुओं और भिक्षुणियों को दान देकर जैनों के भिक्षु-संप्रदाय को जीवित रक्खा था। इसके सिवा जैन लोग सदा से अपनी पुरानी प्रथाओं पर इतने दृढ़ रहे हैं और किसी प्रकार के परिवर्तन से इतने भागते रहे हैं कि जैन धर्म के मोटे मोटे सिद्धांत श्वेतांबरों और दिगंबरों के अलग अलग होने के समय जैसे थे, वैसे ही प्रायः अब भी चले जा रहे हैं। कदाचित् इसी से अब भी जैन धर्म बना हुआ है, जब कि बौद्ध धर्म का अपनी जन्म-भूमि से बिलकुल लोप हो गया है।

चौथा अध्याय

गौतम बुद्ध की जीवनी

बुद्ध का जन्म—गौतम बुद्ध का जन्म कब हुआ तथा उनके निर्वाण का समय क्या है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। डाक्टर पलीट तथा अन्य विद्वानों ने बुद्ध का निर्वाण-काल ईसा के पूर्व ४८७ वर्ष माना है। निर्वाण के समय बुद्ध अस्सी वर्ष के थे; अतएव बुद्ध का जन्म-काल ईसा के ५६७ वर्ष पूर्व निश्चित होता है। कहा जाता है कि अंतिम बार जन्म लेने के पहले बुद्ध भगवान् प्रायः ५५० बार पशु, पक्षी तथा मनुष्य के रूप में जन्म ले चुके थे। बुद्ध के इन जन्मों का हाल उन कथाओं में दिया है, जो "जातक" * के नाम से प्रचलित हैं। अंतिम बार जन्म लेने के पूर्व बुद्ध भगवान् "तुषित" नाम के स्वर्ग में देव के रूप में निवास करते थे। जब इस पृथ्वी पर उनके पुनर्जन्म का समय समीप आया, तब वे बहुत दिनों तक यह विचार करते रहे कि कौन मनुष्य ऐसा योग्य है। जिसके यहाँ हम जन्म लें। अंत में उन्होंने निश्चय किया कि शाक्य वंश के राजा शुद्धोदन की पत्नी मायादेवी के गर्भ में जन्म लेना चाहिए। इस निश्चय के अनुसार बुद्ध ने "तुषित" स्वर्ग से उतरकर शाक्यों की राजधानी कपिल वस्तु में—जो नेपाल की तराई में है—मायादेवी के

---

* हिन्दी में इनकी कुछ चुनी हुई कथाएँ "जातक कथामाला" के नाम से रत्नाकर-माला कार्यालय, काशी द्वारा प्रकाशित हुई हैं। —प्रकाशक।

से कुमार का मन वैराग्य की ओर से हटता न देखा, तब उन्होंने उन्हें विवाह-बंधन में जकड़ने का मनसूबा बाँधा।

सोलह वर्ष की उम्र में राजकुमार का विवाह पड़ोस के कोलिय वंश की राजकुमारी यशोधरा से कर दिया गया। राजकुमार सदा महलों के अंदर रखने जाते थे, क्योंकि उनके पिता को यह भविष्यद्-वाणी याद थी कि राजकुमार राज्य त्यागकर वैराग्य ग्रहण करेंगे। जब राजकुमार उन्तीस वर्ष के हुए, तब देवी प्रेरणा से उन्होंने अपने सारथी को सैर के लिये महलों के बाहर रथ ले चलने को कहा। जब वे रथ पर चढ़कर महल के बाहर जा रहे थे, तब देवताओं ने उनके मन को वैराग्य की ओर प्रवृत्त करने के लिये एक बहुत ही जीर्णकाय बूढ़े मनुष्य को उनके सामने भेजा। राजकुमार ने रथ हाँकनेवाले से पूछा—"यह कौन है?" सारथी ने उत्तर दिया—"यह वृद्ध मनुष्य है। हर एक प्राणी को एक न एक दिन ऐसा ही होना पड़ता है।" यह बात सुनकर राजकुमार के मन में संसार-सुख के प्रति अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न हुई। वहीं से वे महल में लौट आये। इसी तरह दूसरे और तीसरे दिन एक रोगी और एक मुरदा राजकुमार को दिखलाई दिया। राजकुमार ने उसी तरह सारथी से प्रश्न किया, जिसके उत्तर में उसने राजकुमार को जो बात उन दोनों के संबंध में कही, उससे राजकुमार के मन में और भी वैराग्य बढ़ा। चौथी बार, जब वे उपवन को जा रहे थे, रास्ते में उन्हें एक काषाय वस्त्र-धारी भिक्षु दिखलाई पड़ा। जब उन्होंने सारथी से पूछा कि यह कौन है, तब उसने कहा कि यह भिक्षु है, जो [illegible] त्यागकर केवल भिक्षा से अपना

[illegible] संसार के उपकार में जीवन व्यतीत [illegible] समय राजकुमार के मन में संसार का त्याग [illegible] कामना जाग्रत हुई।

राहुल का जन्म

[illegible] राजकुमारी यशोधरा गर्भवती हुई [illegible] राहुल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। [illegible] संन्यास ग्रहण करने का विचार प्रबल [illegible] ऋण से तो कुमार पहले ही [illegible] समाचार सुनकर उन्होंने [illegible] समझा। अब वे तीनों ऋणों [illegible] का अधिकारी समझने [illegible] पर सोलहो कलाओं [illegible] किंतु तत्काल ही [illegible] उत्पन्न आनंद पर [illegible] अंतर्धान हो [illegible] है, जिसने [illegible] उसका नाम [illegible]

[illegible] (गृह-त्याग)

[illegible] एक बार देखने के लिये [illegible] प्रकाश में [illegible] उनका युवा पत्नी चारों ओर फूलों से घिरा [illegible]

[illegible] केवल यही संसार [illegible] के लिये निर्वाण [illegible] यह सोच- [illegible] यहाँ तक कि [illegible] सामने [illegible] अपने वश [illegible] कुछ भी असर [illegible] आक्रमण करने [illegible] दौड़कर भाग [illegible] यदि मेरे [illegible] अधिकार हो, [illegible] बुद्ध की [illegible] कहने [illegible] और [illegible] बुद्ध [illegible]"

बुद्ध का प्रथम उपदेश

[illegible] कि [illegible] उन [illegible] उनका [illegible] जानकर [illegible] वही [illegible] यही

[illegible] मासों में भ्रमण किया [illegible]।

बुद्ध का प्रथम शिष्य

[illegible] सेठ का पुत्र यश [illegible] हुए इस युवक [illegible] है। उसके तीन [illegible] गर्मी के लिये और [illegible] से जागकर उसने [illegible] और उनके वस्त्रों, बालों [illegible] इस युवक ने, जो सुख [illegible] सामने जा कुछ देखा, [illegible] विचार में पड़कर उसने [illegible] विपत्ति है' यह [illegible] चला गया। उस [illegible] इस व्याकुल और [illegible] कैसा दुःख है! [illegible] युवक से कहा— [illegible] है। हे यश, [illegible] तब यश [illegible] यश की स्त्री और माता-पिता [illegible] बुद्ध के पास आये। वहाँ उन लोगों ने भी पवित्र [illegible] ज्ञान का उपदेश सुना और तब वे लोग भी बुद्ध के गृहस्थ शिष्य हो गये।

वहाँ पर, कुछ वर्ष हुए, संयुक्त प्रांत की ऐतिहासिक समिति (यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी) की ओर से खुदाई भी कराई गई थी।

नालगिरि हाथी का दमन

बुद्ध का चचेरा भाई देवदत्त उनका यश और मान देखकर उनसे बहुत डाह करता था और अंदर ही अंदर द्वेष की आग में जला करता था। उसने तीन बार बुद्ध की हत्या करने की चेष्टा की थी। एक बार जब बुद्ध राजगृह की सड़क पर जा रहे थे, तब उसने मगध के महाराज अजातशत्रु की सहायता से नालगिरि नामक एक मतवाला हाथी बुद्ध के प्राण लेने को छोड़ दिया। किंतु ज्योंही वह मतवाला हाथी नगर के फाटक के अंदर घुसा, त्योंही बुद्ध ने उस नाथी के मस्तक पर अपना हाथ फेरकर उसे अपने वश में कर लिया। उसी समय देवदत्त की सलाह से अजातशत्रु अपने बूढ़े पिता महाराज बिंबिसार को बात बात में कष्ट देने लगा। कहा जाता है कि बिंबिसार अंतिम समय में राज्य की बागडोर अपने पुत्र अजातशत्रु के हाथ में देकर एकांत-वास करने लगा। किंतु अजातशत्रु को इतना धैर्य कहाँ कि वह महाराज बनने के लिये बिंबिसार की मृत्यु की प्रतीक्षा करता! बौद्ध ग्रंथों के अनुसार इस राजकुमार ने अपने पिता को भूखों मार डाला। उन्हीं ग्रंथों से यह भी पता लगता है कि जब वह गद्दी पर आया, तब बुद्ध भगवान् जीवित थे। लिखा है कि अजातशत्रु ने भगवान के सामने अपने पापों के लिये बहुत ही पश्चात्ताप किया और उनसे बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण

[illegible] और उपवास
[illegible] में सिर्फ एक दाना
[illegible] सूखकर काँटा हो गये।
[illegible] और शरीर को
[illegible] पूर्ववत् भोजन
[illegible] में बुद्ध गया
[illegible] 'बोधि-
[illegible] करने लगे।
[illegible] उस समय
[illegible] बुद्ध" पदवी
[illegible] अनारस गये
[illegible] अपने
[illegible] प्रचार करते
[illegible] बाद
[illegible] संघटित
[illegible] करने के
[illegible] की राज-
[illegible] बुद्ध का
[illegible] अनुयायी
[illegible] वहाँ
[illegible] शिष्य
[illegible] मल,
[illegible] कर
[illegible] कुशी-

न्यार पहुँचे। वहीं ई० पू० ४८७ के लगभग उनका निर्वाण हुआ। अन्तिम संस्कार करने के बाद बुद्ध के शरीर का जो अवशेष प्राप्त हुआ, उस के आठ भाग किये गये। वे आठों भाग आठ जातियों में बाँट दिये गये और उन पर प्रत्येक जाति ने एक एक स्तूप बनवाया।

इस विषय में भी उनका सिद्धांत नया नहीं है। उनके बहुत पह
सांख्य-दर्शनकार महर्षि कपिल ने तीव्र युक्तियों से वैदिक कर्म
समूह की निन्दा की है। महर्षि कपिल के पहले भी वैदिक कर्म
समूह के प्रति लोग श्रद्धा-रहित हो चुके थे। मुण्डकोपनिषद्
(१. २।७) में कहा गया है—

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं पुनरेवापि यान्ति॥

अर्थात् जिनके निकृष्ट कर्म कहे गये हैं, ऐसे अष्टादश जन-
युक्त (ऋत्विक् १६ + यजमान १ + यजमानपत्नी १ = १८) यज्ञ
रूपी प्लव (नौकाएँ) कमजोर हैं। जो मूर्ख इनको कल्याणकारी
समझकर इनका अभिनन्दन करते हैं, वे फिर फिर जरा और
मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

वैदिक कर्म-समूह की निन्दा करनेवाली और भी अनेक
बातें पाई जाती हैं। गीता में भी कहा है—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
(गीता २.४५)

अर्थात् हे अर्जुन, वेद सत्, रज और तम इन तीनों गुणों
की बातों से भरे पड़े हैं; इसलिये तू निस्त्रैगुण्य अर्थात् त्रिगुणों
से अतीत हो।

(९) द्रव्य-यज्ञ आदि की अपेक्षा प्रज्ञा-यज्ञ को ही श्रेष्ठ मानकर
बुद्धदेव ने इसका प्रचार किया था। पर उनकी इस बात को भी
इस नई नहीं कह सकते। बुद्धदेव ने जैसे पहले द्रव्य-यज्ञ की बात
कहकर अन्त में प्रज्ञा-यज्ञ को ही श्रेष्ठता दी है, वैसे ही गीता में
भी कहा गया है। यथा—

पत्नी को गृहस्थी में इस प्रकार रहना चाहिए—
(१) अपने घर के लोगों से ठीक तरह का बर्ताव करना चाहि
(२) मित्रों और सम्बन्धियों का उचित आदर करना चाहिए
(३) पतिव्रत धर्म का पालन करना चाहिए।
(४) किफायत के साथ घर का प्रबन्ध करना चाहिए।
(५) अपने कार्यों में दक्षता और परिश्रम दिखाना चाहिए।

मित्र और साथी

कार्य पुरुष को मित्रों से इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए—
(१) उन्हें उपहार देना चाहिए।
(२) उनसे मृदु संभाषण करना चाहिए।
(३) उन्हें लाभ पहुँचाना चाहिए।
(४) उनके साथ बराबरी का बर्ताव करना चाहिए।
(५) उन्हें साथ रखकर अपने धन का उपभोग करना चाहिए।
मित्रों को उसके साथ इस प्रकार प्रीति दिखानी चाहिए—
(१) जब वह बेखबर हो, तब उसकी निगरानी करनी चाहिए।
(२) यदि वह कष्टहर हो, तो उसकी संपत्ति की रक्षा करनी चाहिए।
(३) आपत्ति के समय उसे शरण देनी चाहिए।
(४) दुःख के समय उसका साथ देना चाहिए।
(५) उसके कुटुम्ब के प्रति दया दिखलानी चाहिए।

स्वामी और सेवक

स्वामी को सेवकों के साथ इस प्रकार बर्ताव करना चाहिए—
(१) उनकी शक्ति के अनुसार उन्हें काम देना चाहिए।

भिक्षुओं और ब्राह्मणों को गृहस्थ के प्रति इस प्रकार दिखलानी चाहिए—

(१) उसे पाप करने से रोकना चाहिए।
(२) उसे पुण्य करने की शिक्षा देनी चाहिए।
(३) उसके ऊपर दया-भाव रखना चाहिए।
(४) उसे धर्म की शिक्षा देनी चाहिए।
(५) उसके सन्देह दूर करके स्वर्ग का मार्ग बतलाना चाहिए

अब हम गौतम बुद्ध की कर्तव्य-विषयक आज्ञाओं को छोड़ कर उनकी परोपकार-विषयक आज्ञाओं और वचनों का वर्णन करेंगे, जिनके कारण बौद्ध धर्म ने संसार में इतनी प्रसिद्धि पाई है। गौतम बुद्ध का धर्म परोपकार और प्रीति का धर्म है। नीचे के वाक्यों में परोपकार और प्रीति की बहुत ऊँची शिक्षा दी गई है।

"घृणा कभी घृणा से दूर नहीं होती; घृणा केवल प्रीति से दूर होती है—यही इसका स्वभाव है।"

"हम लोगों को प्रीति-पूर्वक रहना चाहिए और उन लोगों से घृणा नहीं करनी चाहिए, जो हमसे घृणा करते हैं। जो लोग हमसे घृणा करते हैं, उनके बीच हमें घृणा से रहित होकर रहना चाहिए।"

"क्रोध को प्रीति से जीतना चाहिए, बुराई को भलाई से जीतना चाहिए, लालच को उदारता से जीतना चाहिए, और झूठ को सच से जीतना चाहिए।"*

गौतम बुद्ध ने अपने अनुयायियों को पुण्य और भलाई के

* धम्मपद—१७. २२०. २२३.

कार्यों की भी बराबर शिक्षा दी है। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

"पाप न करना, भलाई करना और अपने हृदय को [illegible] करना, यही बुद्धों की शिक्षा है।"

"भलाई करनेवाला जब इस संसार को छोड़कर दूसरे लोक में जाता है, तब वहाँ उसके भले कार्य उसके सम्बन्धियों और मित्रों की तरह उसका स्वागत करते हैं।"

"वह मनुष्य बड़ा नहीं है जिसके सिर के बाल पक गये और जिसकी अवस्था अधिक हो गई है।"

"जिसमें सत्य, पुण्य, प्रीति, आत्मनिरोध और संयम और जो अपवित्रता से रहित तथा बुद्धिमान् है, वही बड़ा कहाता है।"*

बुद्ध भगवान की इन उच्च शिक्षाओं का यह प्रभाव हुआ कुछ ही शताब्दियों में बौद्ध धर्म केवल एक ही जाति या देश का नहीं, बल्कि समस्त एशिया का मुख्य धर्म हो गया। इस समय भी समस्त संसार के एक तिहाई से अधिक लोग बौद्ध धर्म मानने वाले हैं। यह सब बुद्ध भगवान् की शिक्षा ही का फल है।

छठा अध्याय

बौद्ध संघ का इतिहास

गौतम बुद्ध ने देश देशांतरों में अपने धर्म का प्रचार करने के लिये भिक्षु-संघ की स्थापना की थी। यह भिक्षु-संघ संसार के धार्मिक इतिहास में अपने ढंग की अनोखी संस्था है। संसार की ऐसी बहुत कम धार्मिक संस्थाएँ हैं, जो इतनी पूर्णता तक पहुँची हों, जितनी पूर्णता तक बौद्ध संघ की संस्था पहुँची है। स्वयं भारतवर्ष के इतिहास में भी यह संस्था अपनी तुलना नहीं रखती। पर बौद्ध धर्म की तरह बौद्ध संघ की भी जड़ भारतवर्ष की भूमि में पहले ही से विद्यमान थी। भारतवर्ष में बुद्ध से बहुत पहले ही भिक्षु, तपस्वी, संन्यासी, यति, वैखानस, परिव्राजक आदि होते चले आये थे। वैदिक धर्म के ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम में बौद्ध संघ का बीज वर्तमान था। बुद्ध भगवान् ने अपने भिक्षु-संघ के लिये जो नियम बनाये थे, वे प्रायः वही थे, जो धर्मशास्त्रों में ब्रह्मचारियों और सन्यासियों के लिये लिखे गये हैं। रामायण, महाभारत और उपनिषदों से पता चलता है कि उस समय स्थान स्थान पर ऋषियों के तपोवन और आश्रम थे, जिनमें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, परिव्राजक और संन्यासी बहुत बड़ी संख्या में एक साथ रहते हुए अपनी आत्मिक उन्नति किया करते थे। बौद्ध ग्रन्थों से भी इस बात के काफी सबूत मिलते हैं कि बुद्ध भगवान् से पहले और बुद्ध भगवान के समय में भी मुण्ड के

अन्तेवासी अपना वस्त्र इस तरह पहनकर कि
खुला रहे, उपाध्याय के पास आता था; और उपाध्याय
में प्रणाम करके पास ही उकड़ूँ होकर बैठ जाता था।
हाथ जोड़कर तीन बार कहता था—"भगवन्, मुझे
अन्तेवासी बनाइए।" यदि उपाध्याय "हाँ" कह देता
यह समझा जाता था कि उसकी प्रार्थना स्वीकृत की गई।
और भिक्षुओं की एक परिषद् या सभा इस बात पर वि
करने के लिये बैठती थी कि यह मनुष्य संघ में भर्ती किया जा
नहीं। भिक्षुओं की परिषद् या सभा उससे कई प्रश्न करती
और जब वह उन प्रश्नों के उत्तर देने में पूरा उतरता था,
भर्ती होने के योग्य समझा जाता था। तब संघ का कोई ए
भिक्षु कम से कम उस भिक्षुओं की परिषद् या सभा के सामने
खड़ा होकर यह सूचित करता था—"संघ के सब लोग सुनें कि अमुक
व्यक्ति अमुक उपाध्याय से उपसंपदा ग्रहण करना चाहता है।
यदि संघ उसे लेने को तैयार हो और आज्ञा दे, तो वह उपस्थित
किया जाय।" आज्ञा मिलने पर वह व्यक्ति परिषद् के सामने
आता था और भिक्षुओं के चरण छूकर उकड़ूँ बैठ जाता था।
इसके बाद वह हाथ जोड़कर तीन बार कहता था—"मैं संघ से
उपसंपदा के लिये प्रार्थना करता हूँ। इसको संघ इस पापपूर्ण
संसार से मेरा उद्धार करे।"

तब एक योग्य और विद्वान् भिक्षु यह "ज्ञप्ति" (प्रस्ति
या प्रस्ताव) करता था—"मैं संघ को सूचित करता हूँ कि
अमुक नाम का यह व्यक्ति अमुक नाम के उपाध्याय से उपसंपदा
ग्रहण करना चाहता है। यदि संघ पसन्द करे, तो मैं

बुद्ध ने यह नियम बनाया था—"हे भिक्षुओ, उपाध्याय को चाहि
कि वह "सद्धिविहारिक" या शिष्य को अपने पुत्र की तरा
समझे; और सद्धिविहारिक को भी चाहिए कि वह उपाध्याय
को अपने पिता की तरह माने। इस तरह दोनों एक दूसरे
का आदर, विश्वास और सहयोग करते हुए धर्म और विनय
की उन्नति करें।"

सद्धिविहारिक अपने उपाध्याय की सेवा दास या भृत्य की
तरह करता था। वह प्रातःकाल उपाध्याय को दुरा दातुन करने
के लिये पानी, और तब जलपान देता था। वह उपाध्याय के साथ
भिक्षा माँगने के लिये जाता था, उसे पीने के लिये पानी देता था,
उसके स्नान के लिये पानी लाता था, उसके वस्त्र सुखाता था
और उसके रहने का स्थान झाड़ता बुहारता था। तात्पर्य यह कि
वह उपाध्याय की हर प्रकार से सेवा करता था।

इसी तरह उपाध्याय भी अपने सद्धिविहारिक की आत्मिक
और शारीरिक उन्नति का पूरा पूरा ध्यान रखता था। वह उसे
शिक्षा देता था, बीमारी में उसकी सेवा टहल करता था और हर
प्रकार से उसकी देखभाल रखता था। यदि शिष्य कोई बहुत ही
अनुचित कार्य करता था, तो उपाध्याय उसे निकाल देता था;
किन्तु क्षमा माँगने पर उसे क्षमा भी कर देता था। यदि उपाध्याय
संघ छोड़कर कहीं चला जाता था, या मर जाता था, या गृहस्था-
श्रम में लौट जाता था, या किसी दूसरे संप्रदाय का अनुयायी हो
जाता था, तो सद्धिविहारिक को अपने लिये दूसरा आचार्य
चुनना पड़ता था।

उपाध्याय के साथ दस वर्षों तक इसी तरह रहने के बाद

पिटक में भिन्न प्रकार की औषधियाँ बनाने और चीर फाड़ करने की विधि लिखी है, जिससे हमें उस समय की वैद्यक विद्या का भी कुछ कुछ पता लगता है।

संघ का प्रबन्ध—अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि संघ की व्यवस्था और प्रबन्ध कैसा था। जब तक बुद्ध भगवान् जीवित थे, तब तक उनकी आज्ञा और उनके शब्द ही संघ के लिये कानून का काम देते थे। पर दो कारणों से यह व्यवस्था स्थायी न हो सकती थी। पहला कारण तो यह था कि देश में संघ का विस्तार इतना अधिक हो रहा था कि एक आदमी के वश का न रह गया था। दूसरा कारण यह था कि बुद्ध के बाद भी संघ का ठीक ठीक परिचालन करने के लिये किसी स्थायी व्यवस्था की आवश्यकता थी। अतएव धीरे धीरे उस स्थायी व्यवस्था का विकास होने लगा। यद्यपि यह व्यवस्था बहुत दिनों में पूर्ण विकास को पहुँची, तथापि इसका बीज बुद्ध के जीवन-समय में ही पड़ गया था। बुद्ध के निर्वाण के बाद जब संघ अपने पूर्ण विकास को पहुँच चुका था, तब भी बुद्ध की आज्ञा और बुद्ध के शब्द ही संघ के लिये कानून थे। वास्तव में संघ का यह एक माना हुआ सिद्धान्त था कि बुद्ध को छोड़कर और कोई संघ के लिये नियम या कानून नहीं बना सकता था। दूसरे लोग बुद्ध के बनाये हुए नियमों की केवल व्याख्या कर सकते थे; पर नये नियम नहीं बना सकते थे। यह सिद्धान्त बुद्ध के निर्वाण के बाद राजगृह की प्रथम बौद्ध महासभा में निश्चित हुआ था।

हर एक संघ अपने प्रबन्ध में स्वतंत्र था। कोई ऐसी बड़ी संस्था न थी, जो कुल संघों पर अपना दबाव रख सकती। यह

भार में होता था। संघ का साधारण कार्य चलाने के लिये संघ की ओर से कुछ भिक्षु नियुक्त थे। ऐसे पदाधिकारियों की संख्या संघ के भिक्षुओं की संख्या के अनुसार भिन्न भिन्न होती थी; पर निम्नलिखित पदाधिकारी प्रायः प्रत्येक संघ में रहते थे—(१) "भक्तोद्देशक"—जो भिक्षुओं को भोजन बाँटता था; (२) "भण्डागारिक"—जो भण्डार का प्रबन्ध करता था, (३) "शयनासनप्रज्ञापक"—जो भिक्षुओं के सोने और रहने का प्रबन्ध करता था; (४) "चीवर प्रतिग्राहक"—जो भिक्षुओं के लिये वस्त्रों का प्रबन्ध करता था, (५) "चीवरभाजक"—जो भिक्षुओं को वस्त्र बाँटता था; (६) "पात्रग्राहापक"—जो भिक्षुओं को भिक्षा-पात्र बाँटता था; (७) "आरामिक प्रेषक"—जो मालियों का निरीक्षण करता था; और (८) "पानीयवारिक"—जो पीने के लिये पानी का प्रबन्ध करता था *। किसी किसी संघ में "नवकर्मिक" नाम का एक और पदाधिकारी रहता था, जिसका काम नई इमारतें बनवाना और पुरानी इमारतों की देखभाल करना होता था।

प्रत्येक संघ में जितने भिक्षु होते थे, वे सब के अधिकार बराबर होते थे। हाँ, वृद्ध और विद्वान् भिक्षुओं का उनकी विद्वत्ता और वृद्धावस्था के कारण अधिक आदर होता था। भिक्षुओं में अवस्था और विद्या के अनुसार थेर (स्थविर) तथा दहर, उपाध्याय तथा सार्थविहारी, आचार्य तथा अन्तेवासी होते थे। पर इनमें भी आपस में और किसी तरह का भेद-भाव न था।

भिक्षुनियों का संघ बिलकुल अलग ही था। भिक्षुनियों के

* इन सब पदाधिकारियों के नाम "चुल्लवग्ग" (४-४ और ६-२१) में दिये हैं।

जाने की मौत की सजा दी जाती थी। बाद को चन्द्रगुप्त के पोते अशोक ने शिकार खेलने की प्रथा बिलकुल ही उठा दी थी।

चन्द्रगुप्त की जीवन-चर्या—चन्द्रगुप्त प्रायः महल के अन्दर ही रहता था, और बाहर सिर्फ मुकदमे सुनने, यज्ञ में सम्मिलित होने या शिकार खेलने के लिये निकलता था। उसे कम से कम दिन में एक बार प्रार्थनापत्र ग्रहण करने और मुकदमे तै करने के लिये अवश्य बाहर आना पड़ता था। चन्द्रगुप्त को मालिश करवाने का भी बड़ा शौक था। जिस समय वह दरबार में लोगों के सामने बैठता था, उस समय चार नौकर उसे मालिश किया करते थे। राजा की वर्षगाँठ बहुत धूमधाम से मनाई जाती थी और बड़े बड़े लोग उसे बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट करते थे। पर इतनी अधिक सावधानता और रक्षा होते हुए भी चन्द्रगुप्त को सदा अपनी जान का भय लगा रहता था। वह डर के मारे दिन को या लगातार दो रात तक एक ही कमरे में कभी नहीं सोता था। मुद्राराक्षस में भी लिखा है कि चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को मार डालने की कई बन्दिशों का पता लगाकर उसकी जान बचाई थी।

चन्द्रगुप्त की सफलताएँ—जिस समय चन्द्रगुप्त राजगद्दी पर बैठा, उस समय उसकी अवस्था अधिक न थी। उसने केवल चौबीस वर्षों तक राज्य किया। इससे मालूम होता है कि वह अपनी मृत्यु के समय पचास वर्ष से कम का ही रहा होगा। इस थोड़े से समय में उसने बड़े बड़े काम किये। उसने सिकन्दर की यूनानी सेनाओं को भारतवर्ष से निकाल बाहर किया, सेल्यूकस को गहरी हार दी, एक समुद्र से लेकर दूसरे समुद्र तक कुल उत्तरी भारत अपने अधिकार में किया, बड़ी भारी सेनाएँ संघटित की और

[illegible] आज्ञा [illegible] प्रजा के साथ पितृवत् व्यवहार [illegible] पड़ोसी जातियों पर कोई अत्याचार न [illegible] इस आज्ञा का प्रायः उल्लंघन [illegible] अपने कलिंग लेख के द्वारा [illegible]— मेरी आज्ञा पूरी करने से तुम [illegible] चुकाओगे।"

[illegible] युद्ध में एक लाख [illegible] आदमी क़ैद किये गये। इनके [illegible] महामारी तथा अन्न का [illegible] लोगों पर पड़ती है। [illegible] समझकर कि मेरे ही [illegible] को बड़ा खेद और [illegible] निश्चय किया कि आ [illegible] मनुष्यों पर अत्या- [illegible] अपने प्रयो- [illegible] मनुष्य कलिंग-युद्ध में [illegible] या १/१०० वें हिस्से [illegible] का कारण [illegible] अपने शेष [illegible] समय के लगभग वह बौद्ध [illegible] अपना शक्ति तथा अधि- [illegible] करना अपने जीवन का [illegible] और [illegible] बौद्ध धर्म [illegible]

रही थीं। इनमें से एक जाति "आट्टों" (अराट्टकों) की थी। यूनानी इतिहास-लेखकों ने इन्हें लुटेरा और डाकू कहा है। महाभारत में भी ये लुटेरे और डाकू कहे गये हैं। ये किसी राजा के शासन में न थे। कदाचित् ये लूट पाट करके अपना गुजारा करते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य ने बहुत कुछ इन्हीं की सहायता से उन यूनानियों को सारी पंजाब से मार भगाया था, जिन्हें सिकंदर परिषमोत्तर भाग तथा पंजाब पर यूनानी शासन स्थिर रखने के लिये छोड़ गया था। कदाचित् इन्हीं की सहायता से चन्द्रगुप्त अपने देश को विदेशी यूनानियों की पराधीनता से स्वतन्त्र करके भारतवर्ष का एकछत्र सम्राट् बन सका *। श्रीयुक्त काशीप्रसाद जायसवाल ने यह अनुमान किया है, और उनका अनुमान ठीक मालूम होता है, कि पंजाब में आजकल जो "अरोड़े" हैं, वे इन्हीं "आट्टों" या "अराट्टकों" में से हैं †।

(२) मालव और क्षुद्रक—"मालव" और "क्षुद्रक" दोनों के नाम महाभारत में भी आते हैं। ये दोनों जातियाँ कौरवों की ओर से लड़ी थीं। सिकंदर को इन दोनों जातियों से बड़ा भयंकर युद्ध करना पड़ा था। यूनानियों ने इनके नाम क्रम से मल्लोई (Mallois) और ओक्सीड्राकाई (Oxydrakai) लिखे हैं ‡। यूनानी इतिहास-लेखक एरियन (Arrian) ने इन दोनों जातियों

* Mc. Crindle's "Invasion of India by Alexander" 38 406.

† Modern Review, May, 1913, p 533.

‡ Mc. Crindle's "Invasion of India by Alexander", 140.

का अनुमान है कि पंजाब और सिन्ध के आजकल के "खत्री" कदाचित् इन्हीं "क्षत्रियों" के बराबर हैं *।

(४) अगलस्सोई—यह जाति भी किसी राजा के अधीन न थी। इसने भी सिकंदर का मुकाबला बड़ी बहादुरी से किया था। इस जाति के लोग बड़े वीर, देशभक्त और आत्मसंयमी के पालक थे। ये अप्रतिष्ठा और जातीय अपमान सहने की अपेक्षा मृत्यु को अधिक श्रेष्ठ समझते थे। इन लोगों ने चालीस हजार पैदल और तीस हजार सवार सेना के साथ सिकंदर का सामना किया, पर अंत में ये हार गये। इनमें से बहुतेरे मार डाले गये और बहुतेरे पकड़कर गुलामों की तरह बेच डाले गये। सिकंदर ने इनके देश में तीस मील तक बढ़कर इनके प्रधान नगर पर कब्जा कर लिया। इसके बाद जब वह दूसरे नगर की ओर बढ़ा, तब बड़ी दृढ़ता के साथ रोका गया। इस लड़ाई में सिकंदर के बहुत से आदमी काम आये। कहा जाता है कि उस नगर में २०,००० मनुष्य थे। जब उन लोगों ने देखा कि अब नगर की रक्षा नहीं हो सकती, तब नगर में आग लगाकर वे सब उसमें जल मरे। इनमें से केवल तीन हजार मनुष्य बच गये। मुसलमानी जमाने में राजपूतों में सती की प्रथा कदाचित् इसी प्राचीन समय की प्रथा का अवशेष थी। यह जाति संभवतः झेलम और चनाब नदियों के बीच में रहती थी। इस जाति का असली नाम क्या था, यह नहीं कहा जा सकता। पर यूनानी लोग इसे अगलस्सोई (Agalassoi) कहते थे †।

* Modern Review, May 1913, p. 535

† V. Smith's "Early History of India" p. 93.

कहते थे। ये किसी राजा के अधीन न थे। राज्य का काम चलाने के लिये ये तीन मुखिया चुनते थे, जो "सेनापति" कहलाते थे। इनकी सेना में साठ हजार पैदल, छः हजार सवार और पाँच सौ रथ थे। इन लोगों ने सिकंदर का आधिपत्य स्वीकृत कर लिया था। ये कदाचित् उस स्थान के पास कहीं रहते थे, जहाँ पंजाब की पाँचो नदियाँ एक होकर सिंधु नदी में मिलती थीं *।

इनके सिवा यूनानी इतिहास-लेखकों ने "संबस्तई" (Sambastai), "गेड्रोसिआइ" (Gedrosii), "एड्रेस्तई" (Adraistai), "सिबोई" (शिव ?) आदि कई प्रजातन्त्र जातियों के नाम लिखे हैं, जो सिकंदर के समय पंजाब में विद्यमान थीं।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रजातन्त्र राज्य—बौद्ध ग्रंथों और यूनानी इतिहासकारों के कथन की पुष्टि कौटिलीय अर्थशास्त्र से भी होती है, जिस में एक अध्याय† संघों या गण-राज्यों के बारे में है। उसमें संघ या गणराज्य दो भागों में बाँटे गये हैं; यथा—

"काम्बोज-सुराष्ट्र-क्षत्रिय श्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविनः।"

"लिच्छिविक-वृज्जक-मल्लक-मद्रक-कुकुर-कुरु-पांचालादयो राजशब्दोपजीविनः॥"

अर्थात्—कांबोज, सुराष्ट्र आदि के क्षत्रिय गण व्यापार तथा खेती करते थे और सेनाओं में भर्ती होकर युद्ध भी करते थे। ये एक प्रकार के गण राज्य हुए। दूसरे प्रकार का गण-राज्य लिच्छवियों, वृजियों, मल्लों, मद्रों, कुकुरों, कुरुओं, पांचालों

---

* Mc. Crindle's "Invasion of India by Alexander" p. 252.

† कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधि० ११, अध्याय १.

इतिहास-लेखकों के इतिहासों और कौटिलीय अर्थ शास्त्र से प्रजातन्त्र की निम्नलिखित विशेषताएँ सूचित होती हैं।

(१) साधारण तौर पर प्रजातन्त्र राज्य के कुल व्यक्ति शासन कार्य में योग देते थे और सब "राजा" कहलाते थे।

(२) इन राज्यों में एक या एक से अधिक प्रधान, मुखिया या अगुआ होते थे, जो शासन कार्य करते थे। किसी किसी राज्य में कुल ऐसे भी होते थे जिनके हाथ में शासन का काम रहता था।

(३) इन राज्यों में सब के अधिकार बराबर समझे जाते थे।

(४) राज्य-संबंधी मामलों पर सब लोग मिलकर सभाभवन या "संथागार" में विचार करते थे।

(५) वे अपने नियमों का पालन यथोचित रूप से करते थे।

(६) अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये कभी कभी कई प्रजातंत्र राज्य एक साथ मिलकर एक संयुक्त राज्य बन जाते थे।

(७) इन राज्यों को अपनी प्रतिष्ठा का बड़ा खयाल रहता था। यहाँ के लोग वीरता के लिये भी प्रसिद्ध थे। हारने की अपेक्षा लड़ते हुए मर जाना वे अधिक उत्तम समझते थे।

(८) कभी कभी उनमें फूट और द्वेष भी हो जाता था।

मौर्य काल में प्रजातन्त्र राज्यों का ह्रास—मौर्य काल में धीरे धीरे प्रजातन्त्र राज्यों का ह्रास होने लगा। चन्द्रगुप्त के मन्त्री राज्य की कुटिल नीति के आगे प्रजातन्त्र राज्य न ठहर सके। राज्य की नीति यह थी कि सब छोटे छोटे राज्यों को तोड़कर बड़ा साम्राज्य खड़ा किया जाय और चन्द्रगुप्त मौर्य इसका प्रवृत्ति बनाया जाय। इसलिये उसने इन राज्यों को धीरे धीरे तोड़कर साम्राज्य में मिलाना शुरू किया। उसने देखा कि

[illegible] उनका एकता में है ज्योंही उनमें फूट [illegible] सकते। इसलिये उसने [illegible] बोना शुरू किया। इसी [illegible] थे। वे गुप्तचर [illegible] और उनमें फूट पैदा [illegible] इस काम में लगाई जाती [illegible] जाती थी, [illegible] का मौका मिलता [illegible] के लिये इसी तरह [illegible] वर्तेत" अर्थात् [illegible] राज्यों का एकछत्र [illegible] कुछ सफल भी [illegible] स्वाधीन प्रजातन्त्र [illegible] मानता। सम्भवतः [illegible] लिये [illegible] राज्यों [illegible] सब कौटिलीय अर्थ [illegible] दिये हुए हैं

नवाँ अध्याय

मौर्य साम्राज्य की शासन पद्धति

मेगास्थिनीज के भारत-वर्णन, कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा अशोक के शिलालेखों से मौर्य साम्राज्य की शासन पद्धति का अच्छा पता लगता है। अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य-शासन का काम लगभग तीस विभागों में बँटा हुआ था। इनमें से मुख्य सेना विभाग, नगर-शासन विभाग, प्रांतीय शासन विभाग, गुप्तचर विभाग, कृषि विभाग, नहर विभाग, व्यापार और वाणिज्य विभाग, नौ विभाग, शुल्क विभाग (चुंगी का महकमा), आकर विभाग (खान का महकमा), सूत्र विभाग (बुनाई का महकमा), सुरा विभाग (आबकारी का महकमा), पशु-रक्षा विभाग, मनुष्य-गणना विभाग, आय-व्यय विभाग, परराष्ट्र विभाग, न्याय विभाग आदि थे। कौटिलीय अर्थशास्त्र में इन विभागों के अध्यक्षों या सुपरिन्टेन्डेन्टों के कर्तव्य बहुत विस्तार के साथ दिये गये हैं।

सेना विभाग

चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना प्राचीन प्रथा के अनुसार चतुरंगिणी थी, किन्तु उसमें जल सेना की विशेषता थी। चन्द्रगुप्त की सेना में ९,००० हाथी, ८००० रथ, ३०,००० घोड़े और ६,००,००० पैदल सिपाही थे। हर एक रथ पर सारथी के सिवा दो धनुर्धर और हर हाथी पर महावत को छोड़कर तीन धनुर्धर बैठते थे। इस तरह से सैनिकों की संख्या ६,००,००० पैदल, ३०,०००

जाते थे; "अमित्र" जो शत्रु देशों में से भर्ती किये जाते थे; और "अटवी" जो जंगली जातियों में से भर्ती किये जाते थे *।

सेना के अस्त्र शस्त्र—कौटिलीय अर्थशास्त्र में "स्थिरयन्त्र" (जो एक ही जगह से चलाया जाय), "चलयन्त्र" (जो एक जगह से दूसरी जगह हटाया जा सके), "हलमुख" (जिसका सिरा हल की तरह हो), "धनुष", "बाण", "खड्ग", "क्षुर-कल्प" (जो छुरे के समान हो) आदि अनेक अस्त्र-शस्त्रों के नाम मिलते हैं। इनके भी बहुत से भेद तथा उपभेद थे †।

दुर्ग या किले—चाणक्य के अनुसार उन दिनों दुर्ग कई प्रकार के होते थे और चारों दिशाओं में बनाये जाते थे। निम्न-लिखित प्रकार के दुर्गों का पता चलता है। "औदक" जो द्वीप की तरह चारों ओर पानी से घिरा रहता था; "पार्वत" जो पर्वतों की चट्टानों पर बनाया जाता था; "धान्वन" जो रेगिस्तान या ऊसर भूमि में बनाया जाता था; और "वनदुर्ग" जो जंगल में बनाया जाता था। इनके सिवा बहुत से छोटे छोटे किले गाँवों के बीच बीच में भी बनाये जाते थे। जो किला ८०० गाँवों के केन्द्र में बनाया जाता था, उसे "स्थानीय"; जो किला ४०० गाँवों के बीच में बनाया जाता था, उसे "द्रोणमुख"; जो किला २०० गाँवों के मध्य में बनाया जाता था, उसे "खार्वटिक"; और जो किला दस गाँवों के केन्द्र में रहता था, उसे "संग्रहण" कहते थे ‡।

---

* कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधि० १, अध्याय २.

† कौटिलीय अर्थशास्त्र; अधि० २, अध्याय १८.

‡ कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधि० २, अध्या० १ और ३

जाता था और उनकी सामाजिक स्थिति के अनुसार उन्हें ठह
के लिये स्थान तथा नौकर चाकर दिये जाते थे। आवश्यक
पड़ने पर वैद्य लोग उनकी चिकित्सा करने के लिये भी नियु
थे। मृत विदेशियों का अन्तिम संस्कार उचित रूप से किय
जाता था। मरने के बाद उनकी सम्पत्ति आदि का प्रबन्ध इस
विभाग की ओर से होता था और उसकी आय उनके उत्तरा
विहारियों के पास भेज दी जाती थी। यह विभाग इस बात का
बड़ा अच्छा प्रमाण है कि ईसवी तीसरी और चौथी शताब्दी में
ी भारतवर्ष का विदेशी राष्ट्रों से पूरा सम्बन्ध था और बहुत से
विदेशी व्यापार आदि के लिये यहाँ आते थे *।

दसवें विभाग का कर्त्तव्य जन्म और मृत्यु की संख्याओं का
ठीक ठीक हिसाब रखना था। ये संख्याएँ इसलिये रक्खी जाती थीं
कि जिससे राज्य को इस बात का पता लगता रहे कि नगर की
आबादी कितनी बढ़ी या कितनी घटी। यह लेखा रखने से प्रजा
से कर वसूल करने में भी सहूलियत होती थी। यह कर एक
प्रकार का पोल टैक्स (Poll-tax) था, जो हर मनुष्य पर
लगाया जाता था। विदेशियों को यह देखकर आश्चर्य होता है कि
इस प्राचीन काल में भी एक भारतीय शासक ने अपने साम्राज्य
की जन-संख्या जानने का ऐसा अच्छा प्रबन्ध कर रक्खा था।

चतुर्थ विभाग के अधीन व्यापार-वाणिज्य का शासन था।
बिक्री की चीजों का भाव नियत करना और सौदागरों से बट-
खरों तथा नाप-जोखों का यथोचित उपयोग कराना इस विभाग

* Indian Antiquary; 1905, p. 200

[illegible] बड़ी सावधानी से इस [illegible] राजमुद्रांकित [illegible] प्रत्येक व्य- [illegible] या लाइसेन्स [illegible] भी देना [illegible] करने के लिये [illegible]

[illegible] वस्तुओं को [illegible] रखते [illegible] नियम [illegible]

[illegible] करता [illegible] नियम [illegible] करता [illegible]

[illegible] सभासदों को [illegible] आवश्यक [illegible] आदि लोगों [illegible] आदि [illegible] था।

[illegible] M[illegible] A[illegible]

बड़ा भारी तूफान आने के कारण वे दोनों नष्ट हो गये। त
राह क्षत्रप रुद्रदामन् ने फिर से बाँध बनवाया; और उस बाँध तथा
झील का संक्षिप्त इतिहास एक शिलालेख में लिख दिया, जो गिरनार
की चट्टान पर खुदा हुआ है*। रुद्रदामन का बनवाया हुआ बाँध
भी समय के प्रवाह में पड़कर टूट गया. और एक बार फिर
सन् ४५८ ई० में स्कन्दगुप्त के स्थानीय अधिकारी की देख
रेख में बनवाया गया। इसके बाद झील और बाँध कब नष्ट
हुए, इसका पता इतिहास में नहीं लगता। पर रुद्रदामन् के उक्त
शिलालेख से इतना अवश्य सिद्ध होता है कि मौर्य सम्राट् सिंचाई
के लिये नहरों आदि का प्रबन्ध करना अपना परम कर्तव्य सम-
झते थे और साम्राज्य के दूरस्थित प्रान्तों की सिंचाई पर भी
पूरा ध्यान रखते थे।

कौटिल्य के लेख से यह भी ज्ञात होता है कि कृषि विभाग
के साथ साथ "अन्तरिक्ष-विद्या विभाग" (Meteorological
Department) भी था। यह विभाग एक प्रकार के यन्त्र
(वर्षमान कुण्ड) के द्वारा इस बात का निश्चय करता था कि
कितना पानी बरस चुका है। बादलों की रंगत से भी इस बात
का पता लगाया जाता था कि पानी बरसेगा या नहीं, और बरसेगा
तो कितना। सूर्य, शुक्र और बृहस्पति की स्थिति और चाल से
भी यह निश्चय किया जाता था कि कितना पानी बरसेगा †।

व्यापार और वाणिज्य विभाग—मौर्य साम्राज्य में व्यापार

* Epigraphia Indica: Vol. VIII p 36
† कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधि० २, अध्या० ३ तथा २४.

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इनके चरित्र, कर्म, आजीविका तथा व्यय जानना, (४) प्रत्येक घर के पालतू पशुओं और पक्षियों की गणना करना; और (५) कर देनेवालों और न देनेवालों की संख्या जानना और यह मालूम करना कि कौन धन के रूप में कर देता है और कौन परिश्रम के रूप में।

गुप्त गिरोहों के कर्मचारी ये थे—(१) प्रत्येक गाँव के कुल मनुष्यों की गणना करना; (२) प्रत्येक गाँव के घरों तथा कुटुम्बों की गणना करना; (३) हर एक कुटुम्ब की जाति तथा वर्ण का पता लगाना; (४) कर-मुक्त गृहों की जाँच करना, (५) प्रत्येक गृह के स्वामी का निश्चय करना, (६) प्रत्येक कुटुम्ब का आय-व्यय जानना; और (७) प्रत्येक घर के पालतू जानवरों की गणना करना। इनके ये काम तो प्रायः गाँवों के कामों से मिलते हैं। पर इनके अतिरिक्त इनके मुख्य काम ये थे—(१) गाँव में नये मनुष्यों के आने तथा गाँव छोड़कर जाने का कारण जानना, और (२) गाँव में नये आनेवाले तथा गाँव छोड़कर जानेवाले आदमियों का लेखा रखना तथा संदिग्ध मनुष्यों पर दृष्टि रखना। ये यह काम गृहस्थों तथा संन्यासियों के रूप में रहकर किया करते थे। कभी कभी ये चोरों के भेस में भी पर्वतों, तीर्थों, घाटों और निर्जन स्थानों में जाकर चोरों, शत्रुओं तथा दुष्टों का पता लगाया करते थे।

राजधानी तथा नगरों के मनुष्यों की गणना करनेवाला कर्मचारी "नागरक" * कहलाता था। प्रत्येक नगर में एक एक

* कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधि० २, अध्या० ३६.

सम्राट् की अदालत होती थी। वह कई विचारकों की सहायता से स्वयं अभियोग सुनता और उनका निर्णय करता था। इन अदालतों के सिवा गाँवों में पंचायतें भी होती थीं, जो ग्रामवासियों के झगड़ों का निपटारा करती थीं। गाँवों की पंचायतों में "ग्रामिक" (गाँव के मुखिया) और गाँव के वृद्ध (ग्राम-वृद्धा) पंच के तौर पर बैठते थे। आवश्यकता पड़ने पर ये लोग चोरी और व्यभिचार के अपराधी को गाँव से बाहर भी निकाल सकते थे।

मौर्य साम्राज्य की दण्ड-नीति बहुत कठोर थी। प्राण-दण्ड तो बहुत ही सहज बात थी। किन्तु अपराध होते ही बहुत कम थे। कठोर दण्ड देने का अवसर ही न आता था। चोरी बहुत ही कम हुआ करती थी। मेगास्थनीज ने लिखा है कि मैं जितने दिनों तक चंद्रगुप्त की राजधानी में रहा, उतने दिन किसी चोरी की २००) से ज्यादा की चोरी नहीं हुई। यह भी ध्यान रहे कि उन दिनों पाटलिपुत्र की आबादी चार लाख थी। चोरी के लिये ऐसा कठोर दण्ड था कि यदि कोई राजकर्मचारी ८ या १० पण (उस समय का एक सिक्का) चुरा लेता था, तो उसे प्राणदण्ड मिलता था; और यदि कोई साधारण आदमी ५ या ५० पण चुराता था, तो उसे प्राणदण्ड दिया जाता था अपराधियों के लिये अठारह प्रकार के दण्डों की व्यवस्था थी, उसमें सात प्रकार से बेंत लगाने का भी विधान था।

वह तीन बार "कर्मवाचा" करता था; अर्थात् तीन बार वह प्रस्ताव उपस्थित करता था। परिषद् का कोई कार्य तब तक नियमानुसार न समझा जाता था, जब तक उसके संबंध में परिषद् के सामने एक बार "ज्ञप्ति" और एक या तीन बार "कर्मवाचा" न हो। जब प्रस्ताव नियमानुसार एक या तीन बार संघ के सामने रख दिया जाता था, तब वह आप ही आप स्वीकृत हो जाता था।

बहुमत—यदि कोई सभ्य प्रस्ताव के विरुद्ध कुछ कहता था और उस पर मत-भेद होता था, तो उपस्थित सभ्यों की राय ली जाती थी, और बहुमत के अनुसार ही फैसला किया जाता था। राय (वोट) लेने के पहले सभ्य-गण व्याख्यान के द्वारा अपने अपने विचार प्रकट करते थे और अपनी अपनी राय पर जोर देते थे। सभ्यों की राय भिन्न भिन्न रंग की शलाकाओं के द्वारा ली जाती थी। एक मत के लिये एक रंग की शलाका होती थी और दूसरे मत के लिये दूसरे रंग की। यह शलाका आज कल के वोटिंग टिकट या पर्ये का काम देती थी। लोगों की राय लेने के लिये और उन्हें यह बतलाने के लिये कि किस रंग की शलाका से क्या तात्पर्य है, संघ की ओर से एक भिक्षु नियत रहता था, जिसे "शलाका-ग्राहक" कहते थे। जो मनुष्य निष्पक्ष, निर्भीक और ईर्ष्या से रहित होता था, वही "शलाका-ग्राहक" नियुक्त होता था। सभ्यों की राय या तो प्रकट रूप से ली जाती थी, या गुप्त रूप से।

अनुपस्थित सभ्यों का राय—जब कोई सभ्य, बीमारी या और किसी कारण से, उपस्थित न हो सकता था, तब वह अपनी राय भेज देता था। अनुपस्थित सभ्यों की नियमानुसार सम्मति को "छन्द" कहते थे। परिषद् की कोई बैठक तब तक नियमानु-

कुल न समझी जाती थी, जब तक सम्मति देने का अधिकार पाये हुए कुल सभ्य उसमें उपस्थित न हों; या किसी कारण अनुपस्थित होने पर उन्होंने नियमानुसार अपनी सम्मति न प्रकट की हो।

अधिवेशन के लिये कम से कम उपस्थिति या कोरम—कम से कम कितने सभ्यों की उपस्थिति होने पर परिषद् की बैठक हो सकती थी, इसके नियम का बड़ा खयाल रक्खा जाता था। भिन्न भिन्न कार्यों के लिये भिन्न भिन्न संख्या नियत थी। कुछ कार्य तो ऐसे थे, जिनके लिये केवल चार सभ्यों की उपस्थिति आवश्यक थी और कुछ ऐसे थे, जिनके लिये कम से कम बीस भिक्षुओं की उपस्थिति परमावश्यक थी। यदि बिना "कोरम" या निर्दिष्ट संख्या के परिषद् की बैठक होती, तो वह नियम-विरुद्ध समझी जाती थी। यदि किसी उपस्थित सभ्य की राय में परिषद् की बैठक नियम-विरुद्ध होती, तो वह उसका विरोध कर सकता था।

गण-पूरक या ह्विप (Whip)—यदि यह समझा जाता था कि परिषद् की किसी बैठक में "कोरम" या निर्दिष्ट संख्या न पूरी होगी, तो "कोरम" पूरा करने का प्रयत्न किया जाता था। इस काम के लिये एक सभ्य नियत किया जाता था, जो "गण-पूरक" कहलाता था। इसे अँगरेजी में "ह्विप" कह सकते हैं।

परिषद् की बैठक के संबंध में इसी तरह के अनेक छोटे बड़े नियम थे, जिनका यहाँ उल्लेख करना असंभव है। यहाँ केवल मोटी मोटी बातों का उल्लेख किया गया है। पर जो कुछ ऊपर लिखा गया है, उससे पाठकों ने समझ लिया होगा कि आज कल के सभ्य देशों में पार्लिमेंट या कौंसिल आदि की बैठकों के जो नियम हैं, प्रायः वे सब बौद्ध काल के संघों और गण-राज्यों

ग्यारहवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल की सामाजिक अवस्था

चार वर्ण—बुद्ध के समय में तथा उनके बाद भी प्राचीन [illegible] सामाजिक दशा कैसी थी, इसकी कुछ कुछ झलक [illegible] और प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में जहाँ तहाँ दिखलाई [illegible] इन ग्रन्थों से पता लगता है कि उस समय का समाज [illegible] विभक्त था [illegible] चारों वर्णों का भिक्षु-सम्प्रदाय के [illegible] उसके बारे में बुद्ध भगवान ने एक स्थान [illegible] कहा था— भिक्षुओ जिस प्रकार गंगा, यमुना [illegible] नदियाँ समुद्र में मिलने पर अपना नाम और [illegible] और समुद्र के रूप में बदल जाती हैं, उसी प्रकार [illegible]) ब्राह्मण (ब्राह्मण) वत्स (वैश्य) और शुद्ध [illegible] भिक्षु सम्प्रदाय में आते हैं तब अपना [illegible] खो देते हैं और समण (श्रमण) कहलाने लगते [illegible] स्थान पर बुद्ध भगवान कहते हैं— हे राजन्, [illegible] वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। इन चारों [illegible] और ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं †।

[illegible] का भाव—कुछ लोगों का विश्वास है कि बुद्ध भगवान ने [illegible] विलकुल उठा दिया था पर वास्तव में यह

* [illegible])—१, १—६.

† [illegible])

का आदर-सत्कार करना सर्वोच्च धर्म लिखा है। गृहस्थाश्रम चारों आश्रमों में सब से श्रेष्ठ समझा गया है। गृहस्थों के लिये गर्भाधान, पुंसवन, जातकर्म आदि संस्कार, अष्टका, पार्वण, पितृ-श्राद्ध आदि दर्श और अग्निहोत्र, अग्निष्टोम आदि श्रौत कर्म लिखे गये हैं। ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम के सिवा दो प्रकार के आश्रम और थे—वानप्रस्थ और संन्यास। वानप्रस्थ या वैखानस वनों में रहते थे, कंद-मूल और फल-फूल खाते थे, पवित्रतापूर्वक जीवन बिताते थे, हवन करते थे और सवेरे सायं सूर्य को अर्घ्य देते थे। इसके विरुद्ध संन्यासी या भिक्षुक सिर मुँड़ाये रहते थे; उनकी कोई संपत्ति या घर नहीं होता था; वे तपस्या करते थे, भिक्षा माँगकर खाते थे; एक वस्त्र या मृगचर्म पहनते थे; भूमि पर सोते थे, और सदा भ्रमण किया करते थे।

ग्राम का मुखिया (ग्राम-भोजक) या राजा के महामात्य करते थे। कभी कभी राजा किसी ग्राम का कर छोड़ भी देता था, या उसे किसी व्यक्ति अथवा संघ के नाम लिख देता था।

यह उन ग्रामों का हाल है, जो राजाओं के अधीन होते थे। पर किसी जातक या बौद्ध ग्रंथ से यह नहीं सूचित होता कि प्राचीन बौद्ध काल के प्रजातन्त्रों या गण राज्यों में भी ग्रामवासियों से इसी प्रकार दशमांश कर वसूल किया जाता था। हाँ अशोक के रुमिन्देईवाले स्तंभलेख से यह अवश्य सूचित होता है कि कदाचित् शाक्यों के गण-राज्य में इस तरह का कर वसूल किया जाता था। स्वयं अशोक ने लुम्बिनी ग्राम का कर माफ कर दिया था। कदाचित् यह कर उस प्राचीन समय से चला आ रहा था, जिस समय लुम्बिनी ग्राम शाक्यों के गण-राज्य में था। इसी लुम्बिनी ग्राम में या इसके पास भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था। पर इसके सिवा और कोई ऐसा प्रमाण नहीं है, जिससे कहा जा सके कि शाक्यों, मल्लों, लिच्छवियों, कोलियों आदि के गण-राज्यों में किसानों पर किसी प्रकार का कर लगाया जाता था। परन्तु फिर भी राज-व्यय के लिये किसी न किसी प्रकार का कर अवश्य रहा होगा।

गाँवों में लोग एक साथ रहते थे। गाँवों के सब घर एक दूसरे से मिले रहते थे। बीच बीच में तंग गलियाँ रहती थीं। जातकों से पता लगता है कि प्रत्येक गाँव में तीस से सौ तक कुटुम्ब रहते थे। जातकों में कई प्रकार के ग्राम लिखे गये हैं, यथा—जान-पद ग्राम, जो नगरों के आस पास होते थे, और पच्चन्त (प्रा-पन्त) ग्राम, जो सीमाओं के पास होते थे। ग्रामों के चारों ओर खेत, जंगल और चरागाह होते थे। उन चरागाहों और जंगलों पर सब का

[illegible] था। चरागाहों में सब लोग अपने गाय [illegible] और जंगलों से जलाने की लकड़ी काट [illegible] गृहस्थ के गाय-बैल अलग अलग होते [illegible] का स्थान एक ही रहता था। जब खेत कट [illegible] चरने के लिये छोड़ दिये जाते थे। पर [illegible] सब चौपाये एक साथ "गोपालक" [illegible] के लिये भेजे जाते थे।

[illegible] जोत बोये जाते थे। सिंचाई के [illegible] नालियाँ या कुएँ खुदवाये जाते थे। [illegible] नियम के अनुसार खेतों में पानी [illegible] अपने अपने खेत के चारों ओर [illegible] सिर्फ एक घेरा होता था [illegible] आ जाते थे। खेत प्रायः [illegible] ग्राम में कुटुम्ब होते थे। [illegible] अपने हिस्से की पैदावार ले [illegible] रहता था। कोई किसा [illegible] के हाथ न ना बच सकता था [illegible] कम बिना ग्राम पंचायत [illegible] सकता था। कोई मनुष्य बिना [illegible] अपना खेत किसी के [illegible] कि वह अपने खेत का [illegible] सकता था। इस सम्बन्ध [illegible] किसान की मृत्यु के बाद [illegible] करता था। यदि कुटुम्ब [illegible]

बनते थे। उन दिनों बिना आपस में सहयोग किये व्यापारियों का काम भी न चल सकता था। चोर डाकुओं से वे अकेले अपनी रक्षा न कर सकते थे। चोर और डाकू दल बाँधकर चोरी करने और डाका डालने के लिये निकलते थे। उनके अत्याचारों से बचने के लिये व्यापारियों को भी समूह बनाकर यात्रा करनी पड़ती थी। डाकुओं के [illegible] जातकों में प्रायः मिलता है। "सत्तिगुम्ब जातक" [illegible] है, जिसमें पाँच सौ डाकू एक मुखिया के [illegible] बाँधकर रहते थे। इस तरह के दलबन्द डाकुओं का मुकाबला व्यापारी और पेशेवाले तभी कर सकते थे, जब वे भी समाज या [illegible] बना कर एक दूसरे की सहायता करते। ऐसे समाजों या श्रेणियों का उल्लेख जातकों में कई जगह आया है।

हर एक पेशेवाले के अलग समुदाय को 'श्रेणी' कहते थे। श्रेणी का उल्लेख केवल बौद्ध ग्रन्थों में ही नहीं बल्कि [illegible] स्मृतियों और प्राचीन शिलालेखों में भी आया है। [illegible] प्रकार के व्यवसायी और व्यापारी थे, सब श्रेणी-बद्ध थे। "मृगपक्ष [illegible]" में [illegible] आये हैं। इससे मालूम [illegible]

बनाते थे। उन दिनों बिना आपस में सहयोग किये व्यापारियों का काम भी न चल सकता था। चोर डाकुओं से वे अकेले अपनी रक्षा न कर सकते थे। चोर और डाकू दल बाँधकर चोरी करने और डाका डालने के लिये निकलते थे। उनके अत्याचारों से बचने के लिये व्यापारियों को भी समूह बनाकर यात्रा करनी पड़ती थी। डाकुओं के दलों का हाल जातकों में प्रायः मिलता है। "सत्तिगुम्ब जातक" में एक ऐसे गाँव का उल्लेख है, जिसमें पाँच सौ डाकू एक सुरंग के नीचे दल बाँधकर रहते थे। इस तरह के दलबन्द डाकुओं का मुकाबला व्यापारी और पेशेवाले तभी कर सकते थे, जब वे भी समाज या श्रेणी बना कर एक दूसरे की सहायता करते। ऐसे समाजों या श्रेणियों का उल्लेख जातकों में कई जगह आया है।

हर एक पेशेवाले के अलग समुदाय को "श्रेणी" कहते थे। श्रेणी का उल्लेख केवल बौद्ध ग्रन्थों में ही नहीं, बल्कि सूत्रों, स्मृतियों और प्राचीन शिलालेखों में भी आया है। प्रायः जितने प्रकार के व्यवसायी और व्यापारी थे, सब श्रेणी-बद्ध थे। "मूगपक्ख जातक" में अठारह श्रेणियों के नाम आये हैं। इससे मालूम होता है कि प्राचीन बौद्ध काल में साधारण तौर पर अठारह प्रकार के व्यवसाय और व्यापार होते थे। ये अठारह प्रकार के व्यवसाय कौन थे, इसका निश्चय करना संभव नहीं है। पर सब ग्रंथों में जितने प्रकार के व्यवसायों का उल्लेख आया है, उन सब का संग्रह करने से अठारह से अधिक व्यवसायों का पता लगता है। इस तरह से संग्रह किये हुए व्यवसायों के नाम इस प्रकार हैं—(१) वड्ढकि (बढ़ई) अर्थात् बढ़ई, जिनमें

[illegible] जहाज, नावें आदि बनानेवाले [illegible] काम करनेवाले कारीगर शामिल थे; [illegible] जनम लोह, चाँदी, सोने, ताँबे आदि [illegible] करनेवाले कारीगर शामिल थे; (३) [illegible] (४) रंगरेज, (५) हाथीदाँत [illegible] (७) मछुए, (८) कसाई; [illegible] या नाई, (१०) माली; (११) [illegible] (१३) चित्रकार, (१४) जुलाहे; [illegible] मन्त्र बचनेवाले; (१८) किसान; [illegible] (काशी करनेवाले); (२०) डाकू [illegible] (२२) बुड़-सवार, (२३) रथी; [illegible] धोबी और (२७) बाँस [illegible] का समाज या श्रेणी

[illegible] जनम से कुछ तो पुश्तैनी थे और [illegible] सकते थे। जो पेशे पुश्तैनी [illegible] की अपेक्षा अधिक सुसंघटित [illegible] "[illegible]" (ज्येष्ठक) कहलाता [illegible] जगह पर रहते थे, और [illegible] के नाम से पुकारा जाता था। [illegible] का काम करनेवाला की [illegible] का गाँव "कम्मार गामो" [illegible] कभी कभी ये गाँव बहुत बड़े होते [illegible] कई हजार लोग बसते थे [illegible]

[illegible] अपनी जीविका चलाती
[illegible] का कार्य करती थीं
[illegible] अर्थशास्त्र के इन उल्लेखों
[illegible] का प्रचार कितना
[illegible] अथवा संघ की
[illegible] होता है कि इन
[illegible] तरह जानते थे।
[illegible] व्यापारी लोग साझे
[illegible] लिखा है कि बना-
[illegible] एक जहाज का
[illegible] है कि दो सौदा-
[illegible] माल लादकर बना-
[illegible] जातक' में लिखा है
[illegible] मिलकर रोज़-
[illegible] यहाँ के सौदागर
[illegible] और भारतवर्ष
[illegible] "महावणिक
[illegible] साथ मिलकर साझे
[illegible] ३, प्रक० ६६
[illegible] है। इस तरह के

तेरहवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल का साहित्य

भाषा और अक्षर—गौतम बुद्ध ने किस भाषा में अपने धर्म का प्रचार किया होगा, इसका अनुमान हम अशोक के शिलालेखों से कर सकते हैं। उन शिलालेखों से हम यह भी अनुमान कर सकते हैं कि बुद्ध से अशोक के समय तक अर्थात् ई० पू० छठी शताब्दी से ई० पू० तीसरी शताब्दी तक भारतवर्ष की बोलचाल की भाषा कौन थी। अशोक के लेख निस्संदेह उसी भाषा में हैं, जिसे उसके समय में लोग बोलते और समझते थे। अशोक के लेखों से सूचित होता है कि प्राचीन बौद्ध काल की राष्ट्रीय भाषा संस्कृत कदापि न थी। संस्कृत तो केवल थोड़े से पढ़े लिखे लोग और ब्राह्मण ही समझते थे।

अशोक के शिलालेखों से विदित होता है कि प्राचीन बौद्ध काल में हिमालय से विन्ध्य पर्वत तक और सिन्धु से गंगा तक उत्तरी भारत की भाषा प्रायः एक ही थी। पर इन लेखों में प्रातःभेद के अनुसार कुछ भेद भी थे। इन भेदों से पता लगता है कि उस समय प्रायः तीन प्रकार की भाषाएँ बोली जाती थीं। इन्हें हम पंजाबी या पश्चिमी भाषा, उज्जैनी या मध्य देश की भाषा और मागधी या पूर्वी भाषा कह सकते हैं।

पश्चिमी या पंजाबी भाषा अन्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत से बहुत मिलती जुलती थी। इसमें "प्रियदर्शी", "श्रमण" आदि

[illegible] ब्राह्मण [illegible] तक [illegible] विषय में लगा है; [illegible] बाद में [illegible] और युद्ध आदि का वर्णन करना [illegible] अपना उपदेश के [illegible] समझते [illegible] ब्राह्मण [illegible] उन्होंने भी [illegible] का भार [illegible] जाता है [illegible] नशा [illegible] राम ने [illegible] गाथा का विचार [illegible] मूल [illegible] है [illegible] इस विषय को कुछ [illegible] किया [illegible] सूतों ने इसे [illegible] प्राकृत प्रमाण नहीं होते थे; [illegible] अपनी रचना करते थे। अतएव [illegible] सूत्र काल से पहले पहल [illegible] अपनी तथा अपने पूर्व [illegible] मतों में बतलाते थे। [illegible] भाषा में ही रचे जाते [illegible] पुराणों और [illegible] का एक साथ सम्पा[illegible] [illegible] पुराणों में प्राचीन राजवंशा- [illegible] जाता है। पार्जिटर साहब ने अपने "डाइनेस्टीज [illegible] कलियुग [illegible] नामक ग्रंथ में सिद्ध [illegible] प्राचीन पुराण [illegible] के आधार [illegible] प्राकृत [illegible] ज्यों का त्यों [illegible] संस्कृत में उनका अनुवाद कर दिया [illegible] तक कि [illegible] कहीं कहीं प्राकृत शब्द [illegible] वैसा ही संस्कृत शब्द [illegible] का प्रयत्न किया गया है [illegible] तथा व्याकरण की अशुद्धियाँ भी रह गई [illegible]

चौदहवाँ अध्याय

[illegible] की शिल्प-कला

[illegible] और जर्मनिया आदि के जो [illegible] शिल्प कला के हजार [illegible] नमन मानो दो हजार [illegible] इस भारतीय शिल्प कला [illegible]। इस बीच में [illegible] न शास्त्रों का प्रचार [illegible] से भारतवर्ष [illegible] का फल यह हुआ [illegible] । यहाँ के [illegible] हो गये। इन [illegible] आदर्शों और [illegible] । अतएव [illegible] कदापि [illegible] उस शिल्प [illegible] । जिस [illegible] धार्मिक भावों [illegible] ओत-प्रोत हैं, उसी [illegible] समय की शिल्प [illegible] आज भारतीय

[illegible] या [illegible] का मूर्तियाँ रहती थीं। [illegible] और भरहुत, साँची, मथुरा [illegible] मिलती हैं। मालूम होता [illegible] पहले काठ या लकड़ी के [illegible] बनाई जाने लगीं, तब उन [illegible] विद्या का बहुत कुछ [illegible] शिलालेखों, शिला- [illegible] उन्हीं को देखकर [illegible] आदि बनवाये होंगे। [illegible] है कि अशोक के [illegible] उन स्तम्भों की [illegible] के चारों ओर [illegible] बनाते थे। [illegible] सेवक गिने [illegible] कम न थी। [illegible] थी, वह अवश्य [illegible] लोग यह कहते [illegible] की नकल [illegible] प्राचीन ईरान [illegible] उसका कारण [illegible] होने के पहले [illegible] थे; और [illegible] प्राचीन समय [illegible] तक प्रच-

[illegible] सारनाथ ही में पहले
[illegible] और बौद्ध धर्म का प्रचार
[illegible] 'धर्मचक्र' था,
[illegible] सारनाथ में, स्तंभ के
[illegible] कला के विद्वानों
[illegible] अच्छी, सुंदर,
[illegible] कठिन है, जैसी
[illegible] प्राचीन ईरान
[illegible] भारतीय मूर्ति-
[illegible] ग्रहण की हो,
[illegible] था कि अब
[illegible] है।
[illegible] चार स्थानों में
[illegible] अमरावती के स्तूप
[illegible] का समय
[illegible] माना गया है।
[illegible] का घेरा था
[illegible] भगतराश का
[illegible] है, वह
[illegible] पड़ता है
[illegible] तब जो
[illegible] लगा।
[illegible] तारणों पर
[illegible] है।

[illegible] पश्चिम को १४४ फुट और
[illegible] यह परिवेष्टन गोलाकार
[illegible] एक दूसरे से दो दो फुट
[illegible] में भी मोटे मोटे पत्थरों
[illegible] पर बेल बूटों का
[illegible] बिलकुल [illegible]
[illegible] अशोक के समय में
[illegible] पर जो लेख खुदे हैं,
[illegible] के बनवाये हुए
[illegible] फाटक या तोरण
[illegible] दूसरी शताब्दी
[illegible] उत्तम काम
[illegible] खुदी हैं।
[illegible] कहीं मन्त्रों
[illegible] रही है, कहीं
[illegible] पीते और

[illegible] किनारे पर
[illegible] के [illegible]
[illegible] नहीं है। [illegible]
[illegible] था। [illegible]
[illegible] उस परि
[illegible] उस पर [illegible]
[illegible] खुदे हैं

प्राचीन बौद्ध काल की मूर्तिकारी में एक विशेष बात ध्यान देने योग्य है। उस काल की बनी हुई बुद्ध भगवान् की मूर्ति कहीं नहीं मिलती। इसका एक मात्र कारण यही है कि पूर्वकालीन बौद्धों ने बुद्ध के "निर्वाण" को यथार्थ रूप में माना था। जिसका निर्वाण हो चुका था, उसकी प्रतिमा भला वे क्यों बनाते? शनैः शनैः जब महायान संप्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ, तब गौतम बुद्ध देवता रूप में पूजे जाने लगे और उनकी मूर्तियाँ बनने लगीं। प्राचीन बौद्ध काल में बुद्ध भगवान् का अस्तित्व कुछ चिह्नों से सूचित किया जाता था; जैसे "बोधि वृक्ष"(पीपल का पेड़), "धर्म-चक्र" अथवा "स्तूप" आदि। इनमें से प्रत्येक चिह्न बुद्ध के जीवन की किसी न किसी प्रधान घटना का सूचक है। पीपल का वृक्ष यह सूचित करता है कि बुद्ध ने इसी पेड़ के नीचे बैठकर बुद्ध पद प्राप्त किया था। इसी तरह चक्र या पहिया बुद्ध के धर्म-प्रचार के आरम्भ का सूचक है और स्तूप उनके निर्वाण (मृत्यु) का चिह्न है। [illegible] चिह्नों से वे स्थान सूचित किये जाते हैं, जहाँ ये प्रधान घटनाएँ हुई थीं।

मौर्य काल की मूर्तियों में पुरुषों की वस्त्र-सामग्री एक धोती मात्र थी। शरीर का ऊपरी भाग बिलकुल नग्न रहता था। इस काल की मूर्तियों में अँगरखा या कुरता कहीं नहीं मिलता। सिर पर एक मुँड़ासा या पगड़ी रहती थी। पुरुषों और विशेष करके स्त्रियों की मूर्तियाँ गहनों से लदी हुई मिलती हैं। इस काल की मूर्तियों के सिर लम्बे, चेहरे गोल और भरे हुए, आँखें बड़ी बड़ी, ओंठ मोटे और कान प्रायः लम्बे हैं। पुरुषों की पगड़ी या मुँड़ासा इतना अधिक उभड़ा हुआ है कि उसके कारण शरीर के

बौद्ध-कालीन भारत

द्वितीय खण्ड

(मौर्य-साम्राज्य के अस्त से गुप्त साम्राज्य के उदय तक)

[illegible] उनकी राजधानी कृष्णा नदी के किनारे पर श्री-[illegible] उस समय यह जाति स्वतन्त्र थी। इस बात [illegible] किस समय आन्ध्र लोग मौर्य साम्राज्य [illegible] विवश किये गये। अशोक [illegible] मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत करद [illegible] अशोक की मृत्यु के बाद अवसर [illegible] स्वतन्त्र हो गये। आन्ध्रों ने [illegible] स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया।

सिमुक और कृष्ण—इस स्वतन्त्र राज्य की स्थापना सिमुक [illegible] के लगभग की। इस नवीन [illegible] यहाँ तक कि वश के [illegible] इसका विस्तार पूर्वी घाट से [illegible] गया। इसके बाद आन्ध्र [illegible] उनमें से केवल एक राजा [illegible] के लगभग मगध [illegible]

हाल शातवाहन—[illegible] हाल शातवाहन नामक [illegible] के लिये प्रसिद्ध है। उसके [illegible] अवस्था में थी। उसने प्राकृत [illegible] उन्नति की। उसने स्वयं प्राचीन [illegible] भाषा में [illegible] "सप्त शतक" के नाम [illegible] पैशाची भाषा में "बृहत्कथा"

[illegible]

यूक्रेटाइडीज के उत्तराधिकारी—यूक्रेटाइडीज के बाद उसके तथा यूथिडेमस के वंश के बहुत से छोटे छोटे यूनानी राजा हुए, जिन्होंने बैक्ट्रिया, काबुल, पंजाब और सिंध को आपस में बाँट लिया। सिक्कों से इस तरह के कम से कम ४० यूनानी राजाओं के नाम मिलते हैं। उनमें से उल्लेख योग्य केवल तीन ही हैं—एक मिलिंद (मिनैंडर), दूसरा एंटिएल्काइडस और तीसरा हर्मेअस।

मिलिन्द (मिनैण्डर)—ऊपर लिखा जा चुका है कि मिलिन्द ने ई० पू० १५५ के लगभग, पुष्यमित्र के राज्य पर हमला करके सुराष्ट्र (काठियावाड़), मथुरा तथा सिंधु नदी के मुहानेवाला प्रान्त अपने राज्य में मिला लिया था। उसने ई० पू० १६० से १४० तक काबुल और पंजाब पर राज्य किया। वह बौद्ध धर्मावलंबी था। यही एक ऐसा यूनानी राजा है, जिसका नाम भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य में मिलता है। "मिलिन्दपन्हो" पाली साहित्य का एक बहुत ही उत्तम रत्न है। उसमें मिलिन्द बौद्ध भिक्षु नागसेन से शंकाएँ तथा प्रश्न करता है और नागसेन उन शंकाओं का समाधान करता है। पंजाब में इस राजा की [illegible] शाकल या सागल थी। आजकल का स्यालकोट ही [illegible] प्राचीन शाकल है।

एन्टिएल्काइडस—इस राजा का नाम ग्वालियर रियासत में भेलसा के पास बेसनगर के एक शिलालेख में मिला है। यह शिलालेख एक [illegible] पर खुदा है। इस से पता लगता है कि [illegible] श्रीकृष्ण [illegible] भगवान के प्रीत्यर्थ स्थापित किया [illegible]। यह [illegible] निवासी, डीओन के पुत्र, हेलिओ- [illegible] था। इस [illegible]

गुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा। उसने ई० सन् ३८८ के लगभग रहे सहे शकों के राज्य भी छीनकर अपने राज्य में मिला लिये और इस प्रकार भारतवर्ष में शक राज्य सदा के लिये समाप्त हो गया।

पार्थिव (पार्थियन) राजवंश

पार्थिव लोग कौन थे—पार्थिव लोग प्राचीन पार्थिया के रहने-वाले थे। पार्थिवों का प्रान्त फारस के रेगिस्तान के उस ओर कैस्पियन सागर के दक्षिण-पूर्व में था। पार्थिवों को "पह्लव" भी कहते हैं। पह्लव शब्द कदाचित् "पार्थिव" का बिगड़ा हुआ रूप है। कुछ विद्वानों का मत है कि दक्षिणी भारत का "पह्लव" राजवंश इन्हीं पार्थिवों या पह्लवों की एक शाखा है*। सेल्यूकस के समय में पार्थिया प्रान्त उसके साम्राज्य में शामिल था। पर सेल्यूकस के बाद उसके पोते एन्टिओकस थीअस के समय में अर्थात् ई० पू० २४८ के लगभग यह प्रान्त यूनानी शासन से बिलकुल स्वतंत्र हो गया। इस आन्दोलन का अगुआ अर्सकेस था, जिसने फारस के अर्सकाइडन राजवंश की स्थापना की थी। धीरे धीरे पार्थिवों का प्रभुत्व फारस में भी फैल गया। किन्तु भारतवर्ष पर पार्थिवों का प्रभाव कदाचित् इसके एक सौ वर्ष बाद हुआ। भारतवर्ष के मुख्य मुख्य पार्थिव (पार्थियन) राजाओं का हाल नीचे दिया जाता है।

मिथ्रडेटस प्रथम—यह पहला पार्थिव राजा है, जिसने अपना सिन्धु नदी तक या कदाचित् उसके इस पार भी फैलाया।

* Fleet—Dynasties of the Kanarese Districts, 2nd ... p. 3.4. (Bombay Gazetteer, Vol I Part II)

पश्चिमोत्तर के समय में ईरान के ससानियन बादशाहों ने हिन्दुस्तान पर हमला करके कदाचित् अपना राज्य यहाँ स्थापित किया। शुद्ध ससानियन सिक्के भी पाये गये हैं, जो वासुदेव के सिक्कों से बिलकुल मिलते जुलते हैं। इसके पश्चात् छोटे छोटे कुषण राजा काबुल और उसके आस पास के प्रान्तों में बहुत दिनों तक राज्य करते रहे; पर पाँचवीं शताब्दी में हूणों ने हमला करके उन्हें बिलकुल नेस्त-नाबूद कर दिया। वासुदेव के नाम से सूचित होता है कि कुषण राजा बाद को पूरे हिन्दू हो गये थे, यहाँ तक कि वे अपना नाम भी हिन्दू ढंग का रखने लगे थे। स्वयं वासुदेव के नाम से सूचित होता है कि वह कदाचित् वैष्णव था, पर उसके सिक्कों पर नन्दी महित शिव की मूर्ति है। उसके सिक्के ७४ से ९८ वर्ष तक के पाये गए हैं; अतएव गद्दी के बाद मोटे तौर पर उसने ४० वर्षों तक राज्य किया। इस हिसाब से उसका राज्य-काल १४०—१८० ई० होता है।

ईसा की तीसरी शताब्दी अंधकारमय—इस बात का एक भी चिह्न नहीं है कि वासुदेव की मृत्यु के बाद कोई सम्राट् या बड़ा राजा रहा हो। मालूम होता है कि कुषण साम्राज्य का अधःपतन होते ही उत्तरी भारत छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्यों में बँट गया। इसी समय आन्ध्र राजाओं का भी अधःपतन हुआ। विष्णु पुराण में अभीर, गर्दभिल, शक, यवन, शाल्वीक आदि विदेशी राजवंशों के नाम मिलते हैं, जो आन्ध्रों के बाद राज्याधिकारी हुए थे। ये राजवंश अधिकतर एक दूसरे के समकालीन थे। इनमें से कोई राजवंश ऐसा न था जो अन्य वंशों पर प्रभुत्व का प्रदर्शन रख सकता। अतः, तीसरी शताब्दी में जितने राज-

[illegible] हुए, [illegible] किसी बात का ठीक पता नहीं है। इसी लिये [illegible] साम्राज्य के अन्त और गुप्त साम्राज्य के उदय के बीच [illegible] समय [illegible] और पर इसकी तीसरी शताब्दी भारतवर्ष के [illegible] कहलाता है। चौथी शताब्दी के प्रारम्भ [illegible] है और गुप्त साम्राज्य के उदय से भारतवर्ष [illegible] इतिहास मिलने लगता है।

—:o:—

दूसरा अध्याय

प्रजातन्त्र या गण राज्य

इस पहले खण्ड के आठवें अध्याय में कह आये हैं कि प्राचीन बौद्ध काल के प्रजातन्त्र राज्य, चाणक्य की कुटिल नीति से, धीरे धीरे मौर्य साम्राज्य में मिला लिये गये और उनका स्वाधीन अस्तित्व सदा के लिये नष्ट हो गया। पर जिस सहयोग के भाव की बदौलत इन सब प्रजातन्त्र राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ था, वह उत्तरी भारत की स्वाधीनता-प्रेमी जातियों में इतना बद्ध-मूल था कि किसी सम्राट् या मन्त्री की कुटिल नीति से लुप्त न हो सकता था। अतएव मौर्य साम्राज्य का पतन होते ही नये नये प्रजातन्त्र राज्य सिर उठाने लगे। सिक्कों से पता लगता है कि मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद एक ही शताब्दी के अन्दर यौधेय, मालव, वृष्णि, आर्जुनायन, औदुम्बर, कुणिन्द, शिबि आदि कई प्रजातन्त्र राज्यों का प्रादुर्भाव हो गया। सिक्कों और शिलालेखों के आधार पर इन प्रजातंत्र राज्यों का विवरण यहाँ दिया जाता है। पर यह कह देना उचित जान पड़ता है कि प्राचीन प्रजातन्त्र राज्यों के लिये कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा बौद्ध ग्रन्थों में "संघ" शब्द आया है। पर जब बुद्ध भगवान् ने अपने भिक्षुओं के समुदाय का नाम "संघ" रक्खा, तब इस शब्द का राजनीतिक अर्थ जाता रहा। बाद को प्रजातन्त्र राज्यों के लिये संघ के बदले गण शब्द का व्यवहार होने लगा; और इसी लिये सिक्कों में

था। यह उनके महत्त्व का ही परिणाम है कि वे जिस प्रान्त में जाकर बसे, वह प्रान्त ही उनके नाम से "मालवा" कहलाने लगा। दोनों गण राज्यों ने विदेशी शक क्षत्रपों से युद्ध किया था। मालवों ने रुद्रदामन् की सेना का और यौधेयों ने रुद्रदामन् की सेना का पूरा पूरा मुकाबला किया था। पर दोनों ही पराजित हो गये। कदाचित् अन्य गण राज्यों को भी विदेशियों का सामना करना पड़ा था; और उनकी भी वही हालत हुई, जो यौधेयों तथा मालवों की हुई थी। इन गण राज्यों के अधःपतन और नाश का एक कारण गुप्त साम्राज्य का उदय भी था। मौर्य साम्राज्य के पहले से ही हर एक सम्राट्, राजनीतिज्ञ और साम्राज्यवादी का यही उद्देश्य था कि ये प्रजातन्त्र या गण राज्य सदा के लिये निर्मूल हो जायें। चन्द्रगुप्त मौर्य अपने कुटिल मन्त्री चाणक्य की सहायता से इन प्रजातन्त्र राज्यों को छिन्न भिन्न करने में बहुत कुछ सफल हुआ था। गुप्त वंश के सम्राट् भी इसी सिद्धान्त पर चलते थे। समुद्रगुप्त के इलाहाबादवाले शिलालेख से पता लगता है कि उस प्रतापी सम्राट् ने "यौधेय", "मालव" और "आर्जुनायन" इन तीन गणों को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। इस प्रकार बाहर से विदेशियों के आक्रमण के कारण तथा अन्दर से साम्राज्य के उदय और वृद्धि के कारण प्राचीन भारत के इन प्रजातन्त्रों या गण राज्यों का सदा के लिये लोप हो गया।

—:o:—

तीसरा अध्याय

धार्मिक दशा

बौद्ध धर्म का विस्तार—अशोक की मृत्यु से कनिष्क के समय तक अर्थात् मोटे तौर पर तीन शताब्दियों तक बौद्ध धर्म उन्नति की ओर बराबर बढ़ता गया। कहा जाता है कि अशोक के बाद शुंग राजाओं ने बौद्धों पर बड़े बड़े अत्याचार किए पर फिर भी बौद्ध धर्म बराबर उन्नति ही करता रहा। यह केवल हिन्दुस्तान के अन्दर ही न रहा, बल्कि इस की सीमा पार करके बराबर मध्य-चीन तक भी फैल गया।

बौद्धों पर पुष्यमित्र का अत्याचार—यह कहना असंभव है कि शुंग वंश के राजा पुष्यमित्र ने बौद्धों पर कितना अत्याचार किया। तारानाथ ने तिब्बती भाषा में बौद्ध धर्म का जो इतिहास ग्रन्थ लिखा है उससे पता लगता है कि पुष्यमित्र नामक शुंग वंशी राजा ने मध्य देश से जालन्धर तक अनेक मठ जलवा दिये और न जाने कितने बौद्ध विद्वानों तथा भिक्षुओं को मरवा डाला। "दिव्यावदान" में लिखा है कि पुष्यमित्र ने बौद्ध धर्म को निर्मूल करने की इच्छा से पाटलिपुत्र का "कुक्कुटाराम" नामक विहार बिल्कुल बरबाद कर दिया और शाकल (वर्तमान स्यालकोट) के आस पास रहने वाले जो भिक्षु बचते थे, उन्हें मरवा डाला। संभव है, बौद्ध ग्रन्थकारों का यह वर्णन अत्युक्तिपूर्ण हो पर इसमें कुछ सार भी अवश्य है।

पश्चिमोत्तर भारत में बौद्ध धर्म—ई० पू० प्रथम और द्वितीय शताब्दी में मध्य देश में बौद्ध धर्म की चाहे जो दशा रही हो, पर पश्चिमोत्तर भारत के यवन या यूनानी राजाओं के राज्यों में उसका खूब प्रचार हो रहा था। प्रसिद्ध यूनानी राजा मिनैंडर (मिलिन्द) बौद्ध धर्म का अनुयायी था। स्थविर नागसेन ने उसे अपने उपदेशों से बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। यही एक ऐसा यूनानी राजा है, जिसका नाम भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य में मिलता है। "मिलिन्द पन्हो" नामक पाली ग्रन्थ में मिलिन्द अपने गुरु स्थविर नागसेन से शंकाएँ तथा प्रश्न करता है; और नागसेन उन शंकाओं का समाधान करता है।

बौद्ध धर्म के अठारह संप्रदाय—बुद्ध के जीवन काल से ही बौद्ध धर्म में बराबर मत-भेद उठते और भिन्न भिन्न संप्रदाय निकलते रहे हैं। इन संप्रदायों के मतभेद दूर करने के लिये समय समय पर बौद्ध भिक्षुओं की महासभाएँ होती रही हैं। अशोक के समय में भी इसी तरह की एक महासभा हुई थी। इस के बाद बौद्ध धर्म फिर धीरे धीरे अनेक संप्रदायों में बँटने लगा। यहाँ तक कि कनिष्क के पहले बौद्ध धर्म में निश्चित रूप से अठारह संप्रदाय हो गये थे। कदाचित् इन अठारहो संप्रदायों को एक करने और उनके मतभेद दूर करने के लिये ही कनिष्क के समय में बौद्ध धर्म की चौथी महासभा हुई थी।

कनिष्क के समय की बौद्ध महासभा—बौद्ध धर्म के इतिहास में कनिष्क के राज्य-काल से एक नया ही युग प्रारंभ होता है। उसका राज्य काशगर, यारकन्द, खुतन, काबुल, कन्धार, सिंध, पश्चिमोत्तर भारत, कश्मीर और मध्य देश में फैला हुआ

था। चीन और तिब्बत के बौद्ध ग्रंथों में उसकी बहुत प्रशंसा है और उसकी तुलना अशोक से की गई है। उसने बौद्ध धर्म के प्रचार में बहुत सहायता दी थी। उसके समय में बौद्ध धर्म की चौथी महासभा हुई। इस सभा के सम्बन्ध में बौद्ध ग्रंथों में परस्पर विरोधी बातें पाई जाती हैं। तारानाथ कृत बौद्ध धर्म के इतिहास में लिखा है कि अठारहों सम्प्रदायों के बीच जो झगड़ा हो रहा था वह इस महासभा में तै हुआ। बौद्ध धर्म के अठारहों सम्प्रदाय मान्य हुए जिनमें सिद्धान्त लिपि-बद्ध किया गया, और गुप्त लिपि में लिखा हुआ अभिधर्म पिटक के सिवा अन्य सब पिटक लिपि-बद्ध नहीं हुए थे। अभिधर्म पिटक भी लिपि-बद्ध किया गया। पर दूसरे तिब्बती ग्रन्थ से पता लगता है कि कनिष्क ने विभिन्न विभिन्न सम्प्रदायों के पारस्परिक विरोध को अन्त करने के लिए अपने गुरु पार्श्व की एक बौद्ध महासभा करने का प्रस्ताव किया। पार्श्व ने यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया और इसके अनुसार बौद्ध धर्म के विद्वानों की एक बड़ी सभा करने का प्रबन्ध किया। कनिष्क ने बहुत से काश्मीर के विद्वानों को एकत्र करके इस महासभा के लिए बड़ा विशाल बन्दोबस्त किया। इस महासभा में ५०० भिक्षु उपस्थित थे। इसके सभापति वसुमित्र और उपसभापति अश्वघोष थे। इन विद्वानों ने समस्त बौद्ध ग्रंथों को बड़े परिश्रम से आलोड़न करके उन्हें अठारह बौद्ध सम्प्रदायों के मत के अनुसार [illegible] और अभिधर्म-पिटक पर बहुत बड़े बड़े भाष्य लिखे। ये भाष्य [illegible] "महाविभाषा-शास्त्र" और "अभिधर्म [illegible]" कहलाते हैं। आश्चर्य होता है कि इन बड़े बड़े भाष्यों में इन सब सम्प्रदायों के सिद्धान्त दूर थे, और सब सम्प्रदायों

को मान्य थे। इस महासभा में सब से मार्के की बात यह हुई कि अठारहों सम्प्रदायों के बीच का पुराना झगड़ा सदा के लिये तै हो गया। पर इसके साथ ही कुछ नये नये सम्प्रदाय भी सिर उठाने लगे। इस तरह का एक सम्प्रदाय "महायान" था। यह पहले ही से अपनी प्रारंभिक अवस्था में विद्यमान था। पर उस समय इसका प्रचार शीघ्रता से होने लगा था।

महायान संप्रदाय की उत्पत्ति—आरम्भ में बुद्ध का धर्म एक प्रकार का संन्यास-मार्ग था। "सुत्तनिपात" के "खग्गविसाणसुत्त" में लिखा है कि जिस भिक्षु ने पूर्ण अर्हतावस्था प्राप्त कर ली हो, वह कोई काम न करे; केवल गैंडे के समान वन में निवास करे। "महावग्ग" (५-१-२७) में लिखा है—"जो भिक्षु निर्वाण पद तक पहुँच चुका हो, उसके लिये न तो कोई काम ही अवशिष्ट रह जाता है और न उसे किया हुआ कर्म ही भोगना पड़ता है।" यह संन्यास मार्ग नहीं तो और क्या है? उपनिषद् के संन्यास-मार्ग से इसका पूरा मेल मिलता है। पर अशोक के समय में बौद्ध धर्म की यह हालत बदल गई थी। बौद्ध भिक्षुओं ने अपना संन्यास मार्ग और एकान्त वास छोड़ दिया था और वे धर्म-प्रचार तथा परोपकार के लिये पूर्व में चीन तक और पश्चिम में यूनान तक फैल गये थे। जब उन्होंने शुष्क संन्यास-मार्ग का आचरण छोड़कर परोपकार के कामों में सम्मिलित होना आरम्भ किया, तब नये और पुराने मत में झगड़ा पैदा हो गया। पुराने मत के लोग अपने मत को "थेरवाद" (वृद्ध पंथ) कहने लगे; और नवीन मतवादी अपने पंथ को "महायान" नाम रखकर पुराने पंथ को "हीनयान" (हीन पथ) कहने लगे।

धर्म की व्यवस्था बिगड़ने पर वे केवल धर्म की रक्षा के लिये समय समय पर बुद्ध के रूप में प्रकट हुआ करते हैं; और देवाधिदेव बुद्ध की भक्ति करने से, उनके स्तूप की पूजा करने से, अथवा उन्हें भक्ति-पूर्वक दो चार पुष्प समर्पण कर देने से मनुष्य को सद्गति प्राप्त हो सकती है" *। मिलिन्द पन्हो (३–७–२) में यह भी लिखा है–"किसी मनुष्य की सारी उम्र दुराचरणों में क्यों न बीती हो, परन्तु मृत्यु के समय यदि वह बुद्ध की शरण में जाय, तो उसे अवश्य स्वर्ग की प्राप्ति होगी।" उसी ग्रन्थ (६–२–४) में नागसेन ने मिलिन्द से कहा है—"गृहस्थाश्रम में रहते हुए भक्ति के द्वारा निर्वाण पद पा लेना असम्भव नहीं है।" बस यही भक्ति-मार्ग महायान की मुख्य विशेषता है।

महायान पर भगवद्गीता का प्रभाव—बुद्ध भगवान् का प्राचीन मत शुद्ध संन्यास-मार्ग था। इस संन्यास-मार्ग में भक्ति-मार्ग की उत्पत्ति आप ही आप, बिना किसी बाहरी प्रभाव के हो गई हो, यह समझ में नहीं आ सकता। अतएव सिद्ध होता है कि इस पर अवश्य कोई बाहरी प्रभाव पड़ा। बौद्ध ग्रन्थों से भी यही सूचित होता है। तिब्बती भाषा के तारानाथ वाले बौद्ध धर्म के इतिहास से पता लगता है कि प्राचीन बौद्ध धर्म में महायान के नाम से जो नया सुधार हुआ, उसके आदि कारण कृष्ण और क्राइस्ट थे। तारानाथ के ग्रन्थ में लिखा है—"महायान पन्थ के मुख्य संस्थापक नागार्जुन का गुरु राहुलभद्र नामक बौद्ध पहले

* देखिये सद्धर्मपुण्डरीक (२, ७०–१८, ५, २२; १५, ५–२२) तथा मिलिन्द पन्हो (१–७–७.)

ब्राह्मण था। उस ब्राह्मण को महायान की कल्पना श्रीकृष्ण तथा गणेश जी की कृपा से प्राप्त हुई थी।" इसका यही अर्थ है कि यद्यपि प्राचीन बौद्ध धर्म केवल सन्यास-प्रधान था, पर उसमें से भक्ति-प्रधान तथा कर्म-प्रधान महायान पन्थ की उत्पत्ति भगवान् श्रीकृष्ण की भगवद्गीता के प्रभाव से हुई, अर्थात् महायान बौद्ध धर्म पर भगवद्गीता का बहुत प्रभाव पड़ा; और उसका भक्ति-मार्ग इसी भगवद्गीता का परिणाम है *।

महायान सम्प्रदाय पर विदेशियों का प्रभाव—जब तक बौद्ध धर्म भारतवर्ष की सीमा के अन्दर रहा, तब तक वह अपने शुद्ध रूप में बना रहा। पर अशोक के समय में जब से वह भारतवर्ष की सीमा पार करके दूसरे देशों में गया, तभी से उसके प्राचीन रूप में परिवर्तन होने लगा। अशोक के समय में उसके धर्म-प्रचारकों ने सीरिया, मिस्र, साइरीनी, यूनान, एपिरस, गान्धार, काम्बोज और लंका में जाकर अपने धर्म का प्रचार किया। यह स्पष्ट है कि गौतम बुद्ध के जो उपदेश या सिद्धान्त भारतवर्ष के अन्दर रहनेवाले लोगों के हृदयों पर प्रभाव डाल सकते थे, वे [illegible] रूप में [illegible] बाहर रहनेवाली यूनानी आदि जातियों [illegible] प्रभाव न डाल सकते थे। इसलिये [illegible] के अनुसार बौद्ध धर्म में परिवर्तन [illegible] आवश्यकता हुई। अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य का [illegible] भारतवर्ष पर यूनानियों, शकों, पार्थियों और

* [illegible] Vanas of Indian Buddhism; [illegible] और तिलक कृत गीता रहस्य, पृष्ठ [illegible]

उपदेश अधिकतर शुद्ध रूप में हैं, पर महायान संप्रदाय में वे परि-
वर्तित रूप में हैं अर्थात् उनमें भक्ति मार्ग की प्रबलता दिखाई देती है।

(३) हीनयान संप्रदाय का अधिक प्रचार दक्षिण में और
विशेषतः [illegible] तथा बरमा में था पर महायान संप्रदाय का प्रचार
[illegible] उत्तर के देशों में और नैपाल तथा चीन में था।

हीनयान संप्रदाय में गौतम बुद्ध देवता के रूप में
[illegible] इसलिये अति प्राचीन बौद्ध काल में उनकी
[illegible] थी। पर महायान संप्रदाय में बुद्ध
[illegible] इसलिये कुषणों के राज्य-काल में
[illegible] बनने लगी।

(४) हीनयान संप्रदाय एक तरह का सन्यास या ज्ञान-
[illegible] पर महायान संप्रदाय एक तरह का भक्ति-मार्ग था;
[illegible] संप्रदाय ने सन्यास या ज्ञान पर और महायान
[illegible] भक्ति या कर्म पर अधिक [illegible] दिया था।

हीनयान के अनुसार [illegible] उसी को निर्वाण मिल
[illegible] जिसने संसार से सब तरह का नाता तोड़कर भिक्षु
[illegible] किया हो पर महायान के अनुसार उन सब को
[illegible] सकता है जिन्होंने [illegible] और भक्ति के मार्ग
[illegible] और जो संसार से [illegible] जोड़े हुए हों।

ब्राह्मण धर्म की स्थिति

[illegible] नष्ट नहीं हुआ—[illegible] कनिष्क
[illegible] ई० पू० [illegible] उत्तरी
[illegible] का प्रचार बहुत जोरों के साथ [illegible] चार

[illegible] ग्रन्थ में हैं [illegible] महायान संप्रदाय में ये परि- [illegible] भक्ति मार्ग की प्रबलता दिखाई देती है।

[illegible] संप्रदाय [illegible] प्रकार दक्षिण में और [illegible] महायान संप्रदाय का प्रचार [illegible] और [illegible] था।

[illegible] रचना के रूप में [illegible] बौद्ध धर्म में उन्हीं [illegible] संप्रदाय में बुद्ध [illegible] के राजप्रासाद में [illegible]

[illegible] अन्यास का आर्ष [illegible] भक्ति-मार्ग की [illegible] और महायान [illegible] था।

[illegible] निर्वाण मिल सकता है [illegible] ईश्वर निर्गुण [illegible] मन भर दी [illegible] भक्ति के मार्ग [illegible] होंइ गये।

[illegible]

ब्राह्मण धर्म [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] बौद्ध धर्म [illegible]

[illegible]

[illegible] भारत में [illegible]

[illegible]

[illegible] शैव [illegible] नहीं बल्कि बहुत पुराना है [illegible] शिव की पूजा इतनी अधिक प्रचलित थी कि विदेशी राजाओं को भी अपने [illegible] पर शिव की मूर्ति रखनी पड़ती थी। इन्डिएल्काइडस के [illegible] से सूचित होता है कि उस समय वहाँ वैष्णव धर्म प्रबल था और उस यवन भी मानने लगे थे।

जाति भेद—अब प्रश्न यह उठता है कि ये सब विदेशी गये कहाँ? क्या वे देश के बाहर निकाल दिये गये? नहीं। उनके नामों, सिक्कों और शिलालेखों से पता चलता है कि वे हिन्दू जाति रूपी महान समुद्र में समा गये। उस समय हिन्दू जाति में दूसरी जातियों को हजम कर लेने की ताकत थी, जिसका मुसलमानों के समय में अभाव हो गया था। उसी शक्ति की बदौलत उस समय चारों वर्णों और उनके अवान्तर भेदों में कुल विदेशी मिला लिये गये। इसी तरह से आजकल की अनेक [illegible] और वर्णसंकरों का जन्म हुआ है। इससे [illegible] है [illegible] जाति-भेद खूब पुष्ट हो गया था, और [illegible] नई जातियाँ बनती जा रही थीं।

ब्राह्मणों का प्रभाव—अशोक के समय में ब्राह्मणों का जो प्रभाव घट गया था, वह इस समय धीरे धीरे फिर बढ़ने लगा था। विशेषतः शुंग और काण्व वंश के राजाओं ने ब्राह्मणों का नष्टप्राय महत्व फिर से स्थापित करने में बहुत सहायता दी। पुष्यमित्र ने स्वयं अश्वमेध यज्ञ करके ब्राह्मणों का सम्मान किया; और काण्व राजा स्वयं ब्राह्मण कुल के थे। इन्हीं दोनों राजवंशों के समय में कदाचित् उस पौराणिक धर्म की नींव पड़ी, जो आगे चलकर गुप्तवंशी राजाओं के समय में पूर्ण उन्नति को प्राप्त हुआ।

बस; उस समय की सामाजिक दशा के बारे में इससे अधिक और कोई बात ज्ञात नहीं है।

[illegible] पर विदेश आया-जाया करते थे।

[illegible] राजाओं के समय उत्तरी भारत का व्यापार—
[illegible] राजाओं का राज्य था, उसी
[illegible] राजाओं का प्रभुत्व था।
[illegible] भूमण्डल के कितने
[illegible] और भारतवर्ष ही
[illegible] राज्य करता था,
[illegible] का डंका बजता
[illegible] राम में अनन्त
[illegible] में हेड्रियन के
[illegible] देश में प्राय
[illegible] आदि वस्तुएँ
[illegible] उनके बदले में
[illegible] के समय में
[illegible] बिकता था।
[illegible] वहाँ के सम्राट्
[illegible] रेशम से
[illegible] मना है *।
[illegible] ने अपने
[illegible] लेकर प्रति
[illegible] विन्सेन्ट स्मिथ

* [illegible] Bhaeran

प्रायः वे सब के सब बौद्धों और जैनों के हैं। ये लोग उस
में प्राकृत या आम बोल चाल की भाषा के पक्षपाती और सं
के प्रचार के विरोधी थे। इसी से इनके शिलालेखों में सं
की अवहेलना हुई है। ब्राह्मण लोग आज से दो हज़ार वर्ष पह
भी संस्कृत ही का विशेष आदर करते थे और उसी में शिला
लेख खुदवाते तथा ग्रन्थ लिखते थे। वासिष्क के समय के जि
शिलालेख का ऊपर उल्लेख किया गया है, वह प्रायः शुद्ध संस्कृत में है।
ब्राह्मण का खुदवाया हुआ है। इसी से वह शुद्ध संस्कृत में है।
इससे सिद्ध होता है कि उस समय में आम बोल चाल की भाषा
प्राकृत और ब्राह्मणों तथा बौद्धों के साहित्य की भाषा संस्कृत थी।

शुंग और कण्व राजाओं के समय में संस्कृत साहित्य—

शुंग और कण्व वंशों के राजाओं के समय में संस्कृत भाषा
और साहित्य का अच्छा प्रचार था। शुंग-वंशी राजा पुष्यमित्र के
आश्रय में रहकर ही पतंजलि ने महाभाष्य की रचना की थी।
कण्व-वंशी राजाओं ने मनु-संहिता का संकलन कराया और रामा-
यण तथा महाभारत को आधुनिक रूप में परिणत किया था।

आन्ध्र-वंशी राजाओं के समय में प्राकृत साहित्य—

आन्ध्र-वंशी राजाओं के समय में प्राकृत भाषा और साहित्य बड़ी
उन्नत अवस्था में थे। विशेष करके इस वंश के राजा हाल सात-
वाहन का समय प्राकृत साहित्य के लिये बड़ी उन्नति का
था। इस राजा ने स्वयं प्राकृत (महाराष्ट्री) भाषा में ७००
पद्य लिखे थे, जो "सप्तशतक" के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस ग्रन्थ
से कि पैशाची भाषा में "बृहत्कथा" और "कथाकोष" नामक
संस्कृत व्याकरण की रचना भी इसी समय हुई थी।

हैं। उनका सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ "बुद्ध-चरित" नामक महाकाव्य है। इस की कविता कालिदास की कविता के जोड़ की है। यदि अश्वघोष का काल ईसवी प्रथम शताब्दी और कालिदास का पंचम शताब्दी माना जाय, तो यही सिद्ध होता है कि कालिदास ने अश्वघोष का अनुकरण किया होगा। अश्वघोष का एक और महाकाव्य "सौन्दरनन्द" है। यद्यपि यह कालिदास के काव्यों की टक्कर का नहीं है, तथापि इसमें मनोरंजन की बहुत कुछ सामग्री है। इसके अनेक अंश भाव-वैचित्र्य और चमत्कार से पूर्ण हैं। इस में कवि ने सुन्दरी और नन्द नामक दो व्यक्तियों के चरित वर्णन करके उसी के बहाने मोक्ष की शिक्षा दी है। अतः इस काव्य में शान्त रस का ही आधिक्य है। इस काव्य का नायक नन्द ऐतिहासिक व्यक्ति है। वह बुद्धदेव की मौसी का लड़का था। कहा जाता है कि अश्वघोष ने अलंकार शास्त्र पर भी एक ग्रन्थ लिखा था। उनके लिखे हुए "महायान-श्रद्धोत्पद-शास्त्र," "सूत्रालंकार" "उपाध्याय-सेवाविधि" आदि और भी सात आठ ग्रन्थों का पता लगा है। उनमें से कुछ ग्रंथों के अनुवाद भी चीनी तथा जापानी भाषाओं में मिलते हैं। नागार्जुन के बारे में कहा जाता है कि वे अश्वघोष के बाद हुए। अश्वघोष की तरह वे भी ब्राह्मण वंश के ही थे। शायद वे महायान पन्थ के जन्मदाता या प्रवर्तक थे; और नहीं तो, कम से कम उसकी शाखा "माध्यमिक सम्प्रदाय" के जन्मदाता तो अवश्य थे। इस सम्प्रदाय का मुख्य ग्रन्थ "माध्यमिक सूत्र" उन्हीं का रचा हुआ है। वसुमित्र उस बौद्ध महासभा के सभापति चुने गये थे, जो कनिष्क के समय में हुई थी। इससे पता लगता है कि वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ विद्वान

[illegible] "मञ्जुश्रीमूलकल्प" [illegible] महायान पन्थ के [illegible] प्रामाण्य ग्रन्थ है।

[illegible] की उत्पत्ति—इस काल में सब से अधिक [illegible] के सब से प्राचीन ग्रन्थ, [illegible] है या जो हम लोगों [illegible] हिन्दुओं ने अठारह [illegible] लिखे थे; पर उनमें [illegible] अठारह प्राचीन सिद्धान्त [illegible] सिद्धान्त, (३) ब्रह्म [illegible] सिद्धान्त, (६) वशिष्ठ [illegible] सिद्धान्त, (९) नारद [illegible] मनु सिद्धान्त, (१२) [illegible] पुलिश सिद्धान्त, [illegible] सिद्धान्त (१७) भृगु [illegible]

[illegible] का अधिकतर [illegible] अठारह सिद्धान्तों में [illegible] सिद्धान्त सब से [illegible] ग्रन्थ "पराशर [illegible] अपनी "बृहत् संहिता [illegible] अध्याय तक [illegible] यवनों या [illegible] है कि यह [illegible] के बाद का है

गर्ग के विषय में इससे कुछ अधिक वृत्तान्त विहित है। गर्ग उन ग्रन्थकारों में हैं, जिनसे हम ई० पू० दूसरी शताब्दी के भारतवर्ष पर यूनानियों के आक्रमण का वृत्तान्त जान सकते हैं। यद्यपि यूनानी म्लेच्छ थे, तो भी गर्ग उनका सम्मान करते थे। उनका निम्नलिखित वाक्य प्रसिद्ध है और बहुधा उद्धृत किया जाता है—"यवन (यूनानी) लोग म्लेच्छ हैं, तथापि वे ज्योतिष शास्त्र अच्छी तरह से जानते हैं, अतः उन का ब्राह्मण ज्योतिषियों से बढ़कर और ऋषियों की तरह सम्मान किया जाता है।" डाक्टर कर्न ने गर्ग का समय पहली शताब्दी माना है।

उक्त सिद्धान्तों में से ब्रह्म, सूर्य, वशिष्ठ, रोमक और पुलिस नामक पाँच सिद्धान्त "पंच सिद्धान्त" के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हीं पाँचों सिद्धान्तों के आधार पर [illegible] मिहिर ने अपनी "पंच सिद्धान्तिका" लिखी थी।

मालूम होता है कि प्राचीन "ब्रह्म सिद्धान्त" [illegible] गुप्त के प्रसिद्ध ग्रन्थ "स्फुट ब्रह्मसिद्धान्त" [illegible] बेरूनी ने ग्यारहवीं शताब्दी में इस "स्फुट ब्रह्मसिद्धान्त" [illegible] पाई थी। उसने इसका उल्लेख अपनी [illegible] "सूर्य सिद्धान्त" प्रसिद्ध ग्रन्थ है, पर [illegible] और परिवर्धन हुए हैं और वह [illegible] गया है कि अब वह अपने मूल रूप में [illegible] ग्रन्थ के समय के सम्बन्ध में इससे [illegible] सकते कि यह इसी बौद्ध काल में [illegible] अन्तिम बार पौराणिक काल में [illegible] होगा। एलबेरूनी "वशिष्ठ सिद्धान्त" [illegible]

हुआ [illegible] है [illegible] का मत है कि विष्णुचन्द्र ने इस प्राचीन [illegible] किया था और यही बात ठीक [illegible] के नाम से जो ग्रन्थ [illegible] है [illegible] सिद्धान्त को [illegible] बनाया हुआ कहते [illegible] है जिसमें ईसा मसीह [illegible] अकबर की सिन्ध- [illegible] परिचित था। [illegible] इस पालिस नामक [illegible] पाँचों सिद्धान्त [illegible] में सकलित [illegible] समय गर्ग और [illegible] माना है।

अन्य शास्त्रों के ग्रन्थ—इस [illegible] अन्य शास्त्रों के भी अनेक ग्रन्थ वर्तमान थे [illegible] नग्नजित ने गृह-निर्माण पत्थर की मूर्तियाँ बनाने [illegible] तथा अन्य ऐसी ही कलाओं के ग्रन्थ बनाये थे [illegible] कि देश में चारों ओर चिकित्सालय स्थापित थे [illegible] भी बहुत उन्नति की थी। कहा जाता है कि प्रसिद्ध चरकसंहिता के रचयिता चरक कनिष्क के दरबार के राजवैद्य थे

सातवाँ अध्याय

शिल्प-कला की दशा

अशोक के बाद शिल्प-कला में परिवर्तन—अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य का वही हाल हुआ, जो औरंगजेब के बाद मुग़ल साम्राज्य का हुआ था। मौर्य साम्राज्य बिलकुल छिन्न भिन्न हो गया; और उसके दूरवर्ती प्रान्त स्वतन्त्र होकर अलग अलग राज्य बन गये। इस मौके पर बैक्ट्रिया और पार्थिया के यूनानी राजाओं ने उत्तरी पंजाब पर आक्रमण करके उस पर अधिकार जमा लिया। प्रायः ढाई सौ वर्षों तक पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त इन यूनानी राजाओं के आधिपत्य में रहा। हर्मेअस अन्तिम यूनानी राजा था, जिसने पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त पर राज्य किया। उसी के समय में भारतवर्ष पर कुषणों का आक्रमण हुआ। यूनानियों के बाद भारतवर्ष पर कुषण राजाओं का शासन प्रायः दो सौ वर्षों तक अर्थात् ईसवी प्रथम दो शताब्दियों में रहा। यूनानी और कुषण इन दोनों विदेशी राजवंशों के शासन काल में भारतवर्ष की प्राचीन शिल्प-कला में बड़ा परिवर्तन हुआ। इस काल की मूर्तिकारी में यूनानी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, जो पहले की मूर्तिकारी में बिलकुल नहीं था। इस काल में यहाँ की प्राचीन मूर्तिकारी में एक दूसरा बड़ा परिवर्तन यह है कि बुद्ध भगवान् की मूर्तियाँ पहले पहल बनाई जाने लगीं। पहले बुद्ध का अस्तित्व कुछ चिह्नों से सूचित किया जाता

था। इस काल की शिल्प-कला या मूर्तिकारी की सब से बड़ी विशेषता [illegible] इस काल की मूर्तिकारी या शिल्प-कला को साधारणतः [illegible] कहते हैं क्योंकि कुषण राजाओं के समय में इसका विशेष उन्नति हुई थी। इस काल की मूर्तियों [illegible] भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर सीमा [illegible] पाया जाता है और जिस पर यूनान की मूर्तिकारी का विशेष प्रभाव है। यह गान्धार मूर्तिकारी के नाम से [illegible] है [illegible] जिसकी उत्पत्ति भारतवर्ष के [illegible] भाग [illegible] अमरावती—में हुई और जिस पर यूनानी [illegible] नहीं पड़ा, [illegible] गान्धार मूर्तिकारी [illegible] गान्धार [illegible] भिन्न है। इसका नाम [illegible] मूर्तिकारी [illegible] है क्योंकि इसमें भारतीय [illegible]

गान्धार मूर्तिकारी—पश्चिमोत्तर [illegible] नाम [illegible] इसलिए पड़ा कि [illegible] जाता है जो प्राचीन समय [illegible] भारत के पाठकों [illegible]

हुआ। इनमें से बहुत से यूनानियों ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। प्रारंभिक काल का शुद्ध बौद्ध मत, जो एक प्रकार से निराकार उपासना का क्रम था, उन विदेशियों की समझ में न आ सकता था। अतएव उन लोगों ने बुद्ध भगवान की साकार उपासना करना आरंभ किया। इसके लिये उन्होंने अपने यूनानी कारीगरों से बुद्ध भगवान की मूर्तियाँ बनवाईं। उस समय तक बुद्ध की कोई मूर्ति नहीं बनी थी; इससे उन यूनानियों के सामने बुद्ध की मूर्ति का कोई आदर्श न था। स्वभावतः उन लोगों ने यूनान की मूर्ति-कला के आदर्श पर ही बुद्ध की मूर्तियाँ गढ़ने का प्रयत्न किया। इस काम के लिये उन्होंने यूनान के सूर्य देवता "अपोलो" की मूर्ति को अपना आदर्श माना। इसी लिये गांधार मूर्तिकारी में बुद्ध की मूर्तियाँ अपोलो देवता की मूर्तियों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। इन सब मूर्तियों में बुद्ध भगवान की युवावस्था दिखलाई गई है। उनके सिर पर उष्णीष (पगड़ी) के आकार की एक जटा रहती है, जो "बुद्ध" का एक प्रधान लक्षण है। जटा के बाल घुँघराले और दाहिनी ओर को मुड़े हुए होते हैं। दोनों भौंहों के बीच में बाल की एक गोल बिन्दी रहती है, जिसे "ऊर्णा" कहते हैं। बुद्ध के मस्तक पर यह ऊर्णा उनके जन्म से ही और महापुरुष का एक प्रधान लक्षण समझी जाती थी। बुद्ध भगवान् के दोनों कन्धों से पैरों तक एक चादर लटकती रहती है, जिसकी सिलवट और डार-बहार बहुत सफाई के साथ दिखलाये होते हैं। यहाँ तक कि उसके किनारे की बनावट और गठन बहुत ही सूक्ष्मता के साथ प्रकट होती है। गान्धार मूर्तिकारी में बुद्ध कभी बैठे हुए और

कभी खड़े हुए मिलते हैं। बुद्ध की बैठी हुई मूर्तियाँ तीन मुद्राओं में पाई जाती हैं; यथा—"ध्यान मुद्रा", "भूमि-स्पर्श मुद्रा" और "धर्मचक्र मुद्रा"। ध्यान मुद्रा में बुद्ध समाधि में स्थित और गोद में एक हाथ पर दूसरा हाथ रक्खे हुए हैं। भूमि स्पर्श मुद्रा में वे दाहिने हाथ से भूमि को स्पर्श करके साक्षी देते हैं। धर्मचक्र मुद्रा में वे दोनों हाथों को छाती तक इस प्रकार उठाये रहते हैं, मानों वे उपदेश कर रहे हैं। बुद्ध की खड़ी मूर्ति प्रायः "अभय मुद्रा" में दिखलाई पड़ती है। इस मुद्रा में वे एक हाथ छाती तक उठाये हुए इस प्रकार दिखलाये गये हैं, मानों वे संसार को अभय-दान दे रहे हों। कभी कभी बुद्ध भगवान् के दोनों अथवा एक ओर बोधिसत्व की मूर्तियाँ भी मिलती हैं। बोधिसत्व की मूर्तियाँ बुद्ध से अलग भी मिलती हैं। बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियों में प्रधान भेद यह है कि बुद्ध संन्यासी के वेष में दिखलाई देते हैं; और बोधिसत्व सुन्दर वस्त्र तथा मुकुट आदि अलंकारों से भूषित राजा महाराजों के सदृश। बुद्ध भगवान् की मूर्तियों में दोनों कन्धे चादर से ढके रहते हैं; पर बोधिसत्व की मूर्तियों में एक कन्धा खुला रहता है। इन मूर्तियों में दाहिना हाथ "वरद मुद्रा" में रहता है और बाएँ हाथ में कमल आदि में से कोई चिह्न रहता है। बोधिसत्व एक दो नहीं वरन् अनेक हैं। प्रधान बोधिसत्व ये हैं—अवलोकितेश्वर, मंजुश्री, मारीचि, वज्रपाणि और मैत्रेय। अवलोकितेश्वर की मूर्तियों में दाहिना हाथ "वरद मुद्रा" में अर्थात् वर देता हुआ और बायाँ हाथ कमल उठा किये हुए दिखलाया गया है। मंजुश्री दाहिने हाथ से तलवार उठाकर मानो अज्ञानान्धकार काट रहे हैं। मारीचि सात

से पढ़ रहे हैं। किसी में वे अपनी कौमार अवस्था
पलंग पर तकिये के सहारे लेटे हुए स्त्रियों का गाना-बजाना
रहे हैं। किसी में वे गृह त्यागकर जंगल को जा रहे हैं। किस
में वे तपस्या कर रहे हैं; यहाँ तक कि तपस्या करते करते
वे सूखकर काँटा हो गये हैं। किसी में वे बोधि वृक्ष के नीचे
बैठे हुए आत्म-ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। किसी में मार तथा उसकी
सेना उन पर आक्रमण कर रही है। किसी में वे अपने पाँचो
शिष्यों को अपने धर्म का प्रथम उपदेश दे रहे हैं। किसी में उन
के दर्शनार्थ इन्द्र आ रहे हैं। किसी में बुद्ध का निर्वाण हो रहा
है, और किसी में उनका शव दिखलाया गया है, आदि।

स्वदेशी कुषण मूर्तिकारी—इसके मूल में स्वदेशी भावों की
प्रधानता है। इस पर चूनारी मूर्तिकारी का प्रभाव कुछ न कुछ
अवश्य पड़ा है; किन्तु वह इतना थोड़ा है और स्वदेशी भावों में
इतना दूध सा गया है कि सहसा ज्ञात नहीं होता। इसकी उत्पत्ति
तथा इसकी प्रथम तीन शताब्दियों में अधिकतर प्रचार मथुरा,
सारनाथ और अमरावती में था।

मथुरा—इसकी प्रथम तीन शताब्दियों में मथुरा बहुत
ही बड़ी नगरी थी। कुषण वंश के राजाओं के अनेक शिला-
ख यहाँ मिले हैं, जिनसे पता लगता है कि उनके समय में मथुरा
व महत्व का स्थान था। यहीं पर कुषण वंश के महाराज
निष्क की बड़े आदम मूर्ति, खंडित दशा में, पाई गई थी; और
यहीं पर शुद्ध संस्कृत भाषा का पहला शिलालेख मिला था, जो
कुषण वंश के महाराज वासिष्क के समय का है। कुषण काल में
यह नगरी बौद्ध, जैन तथा हिन्दू इन तीनों धर्मों का केन्द्र

तीर्थ थी। इसके समीप लाल पत्थर की कई खानें हैं, जिस कारण प्राचीन काल में यह नगरी मूर्ति-निर्माण कला का एक केन्द्र बन गई थी। यहाँ के मूर्तिकार समस्त उत्तरी भारत में प्रसिद्ध थे। जिस तरह आजकल उत्तरी भारत में जयपुर की मूर्तियों का प्रचार है, उसी तरह प्राचीन समय में मथुरा की बनी हुई मूर्तियों का प्रचार था। यहाँ की मूर्तिकारी इतनी प्रसिद्ध थी कि उत्तरी भारत के धनी मनुष्य अपने इष्ट-देवताओं की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ यहाँ से बनवाकर सैकड़ों मील दूर अपने अपने स्थान पर ले जाते थे। उदाहरण के लिये मथुरा की बनी हुई बहुत बड़ी बड़ी कई मूर्तियाँ चार सौ मील दूर सारनाथ में मिलती हैं। केवल कुषण काल में ही नहीं, बल्कि बाद की गुप्त काल में भी मथुरा की मूर्ति-निर्माण कला वैसी ही उन्नत अवस्था में थी। कुषण वंशी राजाओं का राज्य गंधार में भी था और मथुरा में भी। यही कारण है कि मथुरा की मूर्तिकारी पर गान्धार मूर्तिकारी का कुछ प्रभाव मालूम होता है। संभव है, उस समय गन्धार प्रान्त के कुछ मूर्ति-कार मथुरा में आये हों और अपना प्रभाव वहाँ की मूर्ति-निर्माण शैली पर छोड़ गये हों। मथुरा में कुछ मूर्तियाँ ऐसी भी मिली हैं, जिनके वस्त्र, भाव तथा आकृति बिलकुल यूनानियों की सी है।

सारनाथ—मथुरा के समान सारनाथ भी कुषण काल में बौद्ध और जैन धर्म का केन्द्र था। सारनाथ में इन दोनों धर्मों के अनेक मन्दिर और मठ थे, जिन्हें बारहवीं शताब्दी के अन्त में कट्टर मुसलमानों ने तोड़कर मिट्टी में मिला दिया। हिन्दू धर्म के केन्द्र बनारस के प्राचीन मन्दिरों और मूर्तियों का भी यही हाल हुआ। सारनाथ के मूर्तिकार साधारण तौर पर चुनार के

पीले पत्थर की मूर्तियाँ बनाते थे। अशोक का सारनाथवाला शिला-स्तंभ भी इसी पत्थर का बना हुआ है। परन्तु, जैसा कि ऊपर कहा गया है, धनी मनुष्य प्रायः मथुरा की बनी हुई मूर्तियाँ ही अधिक पसन्द करते थे और वहीं से मँगवाकर सारनाथ में स्थापित करते थे। सारनाथ की बनी हुई कुषण काल की मूर्तियों पर भी कुछ कुछ यूनानी प्रभाव दिखाई देता है।

अमरावती—मदरास प्रान्त के गुन्टूर जिले में कृष्णा नदी के किनारे अमरावती नगरी भी कुषण काल में मूर्ति निर्माण-कला का एक केन्द्र थी। यहाँ एक स्तूप के ध्वंसावशेष में संगमरमर की बहुत सी मूर्तियाँ हैं। वे इतनी उत्तम हैं कि मर्मज्ञों की राय में वे भारतीय मूर्तिकारी की पराकाष्ठा हैं। उनकी शैली गन्धार और मथुरा की शैलियों से मिलती है। स्वदेशी भावों की प्रधानता होते हुए भी यूनानी मूर्तिकारी का उन पर जो प्रभाव पड़ा है, उसका पता सहज में लग सकता है।

स्वदेशी कुषण-मूर्तिकारी की विशेषताएँ—गान्धार मूर्तिकारी की तरह मथुरा, सारनाथ तथा अमरावती की मूर्तिकारी में भी एक विशेष बात ध्यान देने योग्य है। इसी काल में हमें पहले पहल बुद्ध की मूर्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं। इन स्थानों में भी कुषण काल के पहले की बुद्ध की कोई मूर्ति नहीं मिलती। गन्धार देश में केवल बौद्ध धर्म सम्बन्धी मूर्तियाँ मिलती हैं; किन्तु मथुरा तथा सारनाथ में कुषण काल की बौद्ध, जैन और हिन्दू तीनों धर्मों से सम्बन्ध रखनेवाली मूर्तियाँ मिलती हैं। गान्धार मूर्तियों की तरह मथुरा आदि में भी कुषण-काल की बौद्ध मूर्तियों के सिरों पर एक उष्णीष (जटा) है; किन्तु बाल घुँघरवाले नहीं।

तीर्थ थी। इसके समीप लाल पत्थर की कई खानें हैं जिस कारण प्राचीन काल में यह नगरी मूर्ति-निर्माण कला का एक केन्द्र बन गई थी। यहाँ के मूर्तिकार समस्त उत्तरी भारत में प्रसिद्ध थे। जिस तरह आजकल उत्तरी भारत में जयपुर की मूर्तियों का प्रचार है उसी तरह प्राचीन समय में मथुरा की बनी हुई मूर्तियों का प्रचार था। यहाँ की मूर्तिकारी इतनी प्रसिद्ध थी कि उत्तरी भारत के धनी मनुष्य अपने इष्ट-देवताओं की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ यहाँ से बनवाकर सैकड़ों मील दूर अपने अपने स्थान पर ले जाते थे। उदाहरण के लिये मथुरा की बनी हुई बहुत बड़ी बड़ी कई मूर्तियाँ चार सौ मील दूर सारनाथ में मिलती हैं। केवल कुषण काल में ही नहीं, बल्कि बाद को गुप्त काल में भी मथुरा की मूर्ति-निर्माण कला वैसी ही उन्नत अवस्था में थी। कुषण वंशी राजाओं का राज्य गंधार में भी था और मथुरा में भी। यही कारण है कि मथुरा की मूर्तिकारी पर गान्धार मूर्तिकारी का कुछ प्रभाव मालूम होता है। संभव है, उस समय गन्धार प्रान्त के कुछ मूर्तिकार मथुरा में आये हों और अपना प्रभाव वहाँ की मूर्ति-निर्माण शैली पर छोड़ गये हों। मथुरा में कुछ मूर्तियाँ ऐसी भी मिली हैं, जिनके वस्त्र, भाव तथा आकृति बिलकुल यूनानियों की सी है।

सारनाथ—मथुरा के समान सारनाथ भी कुषण काल में बौद्ध और जैन धर्म का केन्द्र था। सारनाथ में इन दोनों धर्मों के अनेक मन्दिर और मठ थे, जिन्हें बारहवीं शताब्दी के अन्त में कट्टर मुसल्मानों ने तोड़कर मिट्टी में मिला दिया। हिन्दू धर्म के केन्द्र बनारस के प्राचीन मन्दिरों और मूर्तियों का भी यही हाल हुआ। सारनाथ के मूर्तिकार साधारण तौर पर चुनार के

पीले पत्थर की मूर्तियाँ बनाते थे। अशोक का सारनाथवाला
सिंह-स्तंभ भी इसी पत्थर का बना हुआ है। परन्तु, जैसा कि
ऊपर कहा गया है, धनी मनुष्य प्रायः मथुरा की बनी हुई मूर्तियों
ही अधिक पसन्द करते थे और वहीं से मँगवाकर सारनाथ में
स्थापित करते थे। सारनाथ की बनी हुई कुषण काल की मूर्तियों
पर भी कुछ कुछ यूनानी प्रभाव दिखाई देता है।

अमरावती—नरसल प्रान्त के गुन्टूर जिले में कृष्णा नदी के
किनारे अमरावती नगरी भी कुषण काल में मूर्ति निर्माण-कला
का एक केन्द्र थी। यहाँ एक स्तूप के ध्वंसावशेष में संगमरमर
की बहुत सी मूर्तियाँ हैं। वे इतनी उत्तम हैं कि मनुष्यों की रच
में वे भारतीय मूर्तियों की पराकाष्ठा हैं। उनकी शैली गन्धार
और मथुरा की शैलियों से मिलती है। स्वदेशी भावों की
प्रधानता होते हुए भी यूनानी मूर्तिकारों का उन पर जो प्रभाव
पड़ा है, उसका पता सहज में लग सकता है।

स्वदेशी कुषण-मूर्तिकारों की विशेषताएँ—गन्धार मूर्तिकारों
की तरह मथुरा, सारनाथ तथा अमरावती की मूर्तिकारों ने भी
एक विशेष बात ध्यान देने योग्य है। इसी काल में हमें पहले
पहल बुद्ध की मूर्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं। इन स्थानों में भी
कुषण काल के पहले की बुद्ध की कोई मूर्ति नहीं मिलती। गन्धार
देश में केवल बौद्ध धर्म सम्बन्धी मूर्तियाँ मिलती हैं; किन्तु मथुरा
तथा सारनाथ में कुषण काल की बौद्ध, जैन और हिन्दू तीनों
धर्मों से सम्बन्ध रखनेवाली मूर्तियाँ मिलती हैं। गान्धार मूर्तियों
की तरह मथुरा आदि में भी कुषण-काल की बौद्ध मूर्तियों के
सिरों पर एक उष्णीष (जटा) है; किन्तु बाल घुँघरवाले नहीं।

आठवाँ अध्याय

बौद्ध धर्म का ह्रास और पौराणिक धर्म का विकास

बुद्ध के समय में बौद्ध धर्म केवल एक छोटे से प्रान्त में सीमाबद्ध था। जब ई० पू० ४८७ के लगभग बुद्ध भगवान् का निर्वाण हुआ, तब बौद्ध धर्म केवल एक छोटा सा संप्रदाय था। उस समय उसका प्रचार केवल गया, प्रयाग और हिमालय के बीचवाले प्रान्त में था। पर अशोक के धार्मिक उत्साह की बदौलत वह धर्म केवल कुल भारतवर्ष में ही नहीं, बल्कि उसके बाहर भी दूसरे देशों में फैल गया। अशोक के समय से कनिष्क के समय तक अर्थात् मोटे तौर पर ई० पू० २०० से ई० प० २०० तक बौद्ध धर्म का प्रचार उत्तरी भारत में बड़ी प्रबलता के साथ हो रहा था। इन चार सौ वर्षों की बनी हुई मूर्तियों, स्तूपों और मन्दिरों के जो भग्नावशेष तथा शिलालेख मिले हैं, वे सब प्रायः बौद्ध धर्म सम्बन्धी हैं। पर इससे यह न समझ लेना चाहिए कि हिन्दू या ब्राह्मण धर्म उस समय बिलकुल लुप्त हो गया था। यज्ञ आदि उस समय भी होते थे, पर अधिक नहीं। हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा भी लुप्त नहीं हुई थी। इसका सबूत पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ, एन्टिएल्काइडस के बेस-नगरवाले शिलालेख, कैडफाइसिज द्वितीय तथा वासुदेव के सिक्कों और वासिष्क के मथुरावाले यूप-स्तंभ से मिलता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जो बौद्ध धर्म किसी समय सारे

दोनों भौंहों के बीच में माला की एक गोलाकार बिन्दी अर्थात् ऊर्णा भी रहती है। गान्धार मूर्तियों की तरह बुद्ध के दोनों कन्धों में एक चादर पैर तक लटकती रहती है, किन्तु कपड़े की बारीकी वैसी स्पष्टी के साथ नहीं दिखलाई गई, जैसी गुप्त काल की मूर्तियों में है। मूर्ति के सिर के चारों ओर एक बिलकुल सादा तथा अलंकार-रहित प्रभामण्डल भी रहता है। बाद को गुप्त काल में यही प्रभामण्डल सादा नहीं, किन्तु बेल-बूटों से खूब सजा हुआ मिलता है। इसके सिवा कुषण काल की मूर्तियों में वह गम्भीरता, शान्ति तथा चित्ताकर्षक भाव नहीं है, जो गुप्त काल की मूर्तियों में है। कुषण काल की मूर्तियों में जो कुछ विदेशी भाव थे, वे गुप्त काल की मूर्तियों से बिलकुल लुप्त हो गये। गुप्त काल का इतिहास हमारे विषय के बाहर है, इससे उस काल की शिल्प कला के सम्बन्ध में हम विशेष नहीं लिखना चाहते।

आठवाँ अध्याय

बौद्ध धर्म का ह्रास और पौराणिक धर्म का विकास

बुद्ध के समय में बौद्ध धर्म केवल एक छोटे से प्रान्त में सीमाबद्ध था। जब ई० पू० ४८७ के लगभग बुद्ध भगवान् का निर्वाण हुआ, तब बौद्ध धर्म केवल एक छोटा सा संप्रदाय था। उस समय उसका प्रचार केवल गया, प्रयाग और हिमालय के पासवाले प्रान्त में था। पर अशोक के धार्मिक उत्साह की बदौलत वह धर्म केवल कुछ भारतवर्ष में ही नहीं, बल्कि उसके बाहर भी दूसरे देशों में फैल गया। अशोक के समय से कनिष्क के समय तक अर्थात् मोटे तौर पर ई० पू० २०० से ई० प० २०० तक बौद्ध धर्म का प्रचार उत्तरी भारत में बड़ी प्रबलता के साथ हो रहा था। इन चार सौ वर्षों की बनी हुई मूर्तियों, स्तूपों और मन्दिरों के जो भग्नावशेष तथा शिलालेख मिले हैं, वे सब प्रायः बौद्ध धर्म सम्बन्धी हैं। पर इससे यह न समझ लेना चाहिए कि हिन्दू या ब्राह्मण धर्म उस समय बिलकुल लुप्त हो गया था। यज्ञ आदि उस समय भी होते थे, पर अधिक नहीं। हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा भी लुप्त नहीं हुई थी। इसका सबूत पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ, एन्टिएल्किडस के बेसनगरवाले शिलालेख, कैडफाइसिस द्वितीय तथा वासुदेव के सिक्कों और वासिष्क के मथुरावाले यूप-स्तंभ से मिलता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जो बौद्ध धर्म किसी समय सारे

निर्वाण कब हुआ, यही सूचित करने के लिये ये शून्य बनाये जाते थे। सन् ४८९ ई० तक इन शून्यों की संख्या ९०५ थी। अतएव ९०५ में से ४८९ निकाल देने से ४८६ बचता है और यही समय बुद्ध के निर्वाण का था*।

(३) खुतन (चीनी तुर्किस्तान) में पाये गये बौद्ध ग्रन्थों में [illegible] एक दन्त-कथा से पता लगता है कि बुद्ध-निर्वाण के २५० वर्ष बाद अशोक हुए। इस दन्त-कथा से यह भी पता चलता है कि अशोक चीन के बादशाह शेह्वांगटी का समकालीन था। शेह्वांगटी ने ई० पू० २४६ से ई० पू० २१० तक राज्य किया था। अतएव २४६ में २५० जोड़ देने से बुद्ध का निर्वाण-काल ई० पू० पाँचवीं शताब्दी में ४८० के लगभग सिद्ध होता है†।

परिशिष्ट (ग)

बौद्ध काल के विश्वविद्यालय

तक्षशिला विश्वविद्यालय

बौद्ध-कालीन भारत का सब से प्राचीन और सब से प्रसिद्ध विद्यालय तक्षशिला में था। इस प्राचीन नगर के खँडहर अब तक मिलते हैं। रावलपिण्डी से बीस मील पर जो सरायकाला स्टेशन है, उससे थोड़ी ही दूर पर, उत्तर पूर्व की ओर, ३-४ मील के घेरे में वे फैले हुए हैं। तक्षशिला जिस स्थान पर बसा हुआ था, वह पहाड़ की एक बहुत ही रमणीक तराई है। इसके सिवा यह नगर उस सड़क पर बसा हुआ

---

* जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी ग्रेट ब्रिटेन, १९०५, पृ० ५१।

† जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, १८८६, पृ० १९३-२०३।

( ) — [illegible] Deccan

( ) Buh[illegible] — Indian Palaeogra-
[illegible] Antiquary 1904 (Appendix)

[illegible] Mahavira, Indian Anti-
[illegible] and 167.

[illegible] Lopes

[illegible]

[illegible] Buddhist Temple at
[illegible]

( ) [illegible] Geography of India.

[illegible]

( ) — [illegible] Indian [illegible]

( ) [illegible] — The Geographical Dictionary of Ancient
and M[illegible] India Revised edition in Indian
[illegible]

( ) [illegible] by Suriyagoda Sumanga's
[illegible] Text Society)

( ) — [illegible] Max Muller Sacred Books of
the East Vol. X

( ) Digha Nakaya—Edited by T. W. Rhys Davids and
J. E. Carpenter (Pali Text Society.)

( ) Dipvansa—Edited and translated by H. Oldenburg.

( ) Divyavadana—Edited by Cowell and Neil

(27) Dutt R. C.—History of Civilisation in Ancient India.

(28) Eliot Sir Charles—Hinduism and Buddhism in 3
Volumes.

(29) Fergusson, J.—Tree and Serpent Worship
— History of Indian and Eastern Architecture.

(30) Fick, R.—The Social Organisation in North-East
India in Buddha's Time, translated from Ger-
man by S. K. Maitra.

(31) Fleet, J. F.—Epigraphy. Imperial Gazetter II.
(32) — Mega Manes, and Vonones J R A. S 1907.
(33) Foucher, A —The Beginnings of Buddhist Art. Translated from French by F W. Thomas.
(34) Geiger, W.—Dipvamsa and Mahavamsa. Indian Antiquary 1906. p. 153.
(35) Grunwedel, A —Buddhist Art in India.
(36) Hardy, R. S —Eastern Monarchism.
(37) — Manual of Buddhism.
(38) Hargreaves, H.—The Buddhist Story in Stone.
(39) Havell, E B.—The History of Aryan Rule in India.
(40) — Indian Sculpture and Painting.
(41) Hoerle A. F. R —History and Doctrines of Gosala in Hastings, Encyclopædia of Religion and Ethics, Vol. I. p. 253.
(42) — Proceedings of the Asiatic Society of Bengal, 1893 p 39
(43) Hultzsch E —Jatakas at Bharaut. J. R. A. S. 1912. p 399
(44) Jacobi H —On Mahavira and his Predecessors. Indian Antiquary, IX. p 158.
(45) — Introduction to Sacred Books of the East, Vols. XXII and XLV.
(46) Jagmander Lal Jaini.—Outlines of Jainism.
(47) Jataka—Edited by V. Fausboll.
(48) — Translated by various hands under the editorship of E. B. Cowell.
(49) Jayaswal. K. P.—An Introduction to Hindu Polity Modern Review. 1911.
(50) Kennedy. J.—The Secret of Kalkika. J. R. A. S. 1912.